अद्यतन
हिन्दी काव्य

अद्यतन हिन्दी काव्य

[एम. जे. पी. रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय के बी. ए. (तृतीय वर्ष) हिन्दी साहित्य प्रथम प्रश्न-पत्र के लिए नवीनतम पाठ्यक्रमानुसार]

लेखक

डॉ. रामस्वरूप आर्य
अवकाश प्राप्त रीडर एवं अध्यक्ष
वर्धमान कालेज, बिजनौर

एवं

डॉ. भगवान शरण भारद्वाज
अवकाश प्राप्त रीडर एवं अध्यक्ष
बरेली कालेज, बरेली

प्रकाशक

एस. के. पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स

बड़ा, बाजार, बरेली

प्रकाशक एवं लेखक उन सभी रचनाकारों एवं उनके उत्तराधिकारियों के आभारी है जिन्होंने अपनी मूल रचनायें छापने की अनुमति प्रदान करके इस पाठ्य-पुस्तक को प्रकाशित करने की अनुमति दी।

प्रकाशक :
एस. के. पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स
बड़ा, बाजार, बरेली

प्रथम संस्करण : 2013-14

मूल्य :
साठ रुपये मात्र।
(₹ : 60/-)

कम्प्यूटर टाइप सैटिंग :
इण्डियन ग्राफिक्स, आगरा

मुद्रक :
सुनित प्रिंटर्स, बरेली

एम. जे. पी. रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली

निर्धारित पाठ्यक्रम

बी० ए० तृतीय वर्ष—हिन्दी साहित्य

(प्रथम प्रश्न पत्र)

अद्यतन हिन्दी काव्य

पूर्णांक : 75

---

(1) सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन अज्ञेय—नदी के द्वीप, यह दीप अकेला, कलगी बाजरे की, बाबरा अहेरी, उड़ चल हारिल।

(2) **मुक्तिबोध :** मुझे कदम—कदम पर, गुथे तुमसे बिंधे तुमसे, रात चलते हैं अकेले ही सितारे मृत्यु और कवि, पूँजीवादी समाज के प्रति।

(3) **नागार्जुन :** गुलाबी चूड़ियाँ सिंदूर तिलकित भाल, बादल को घिरते देखा है, आकाल और उसके बाद, मेरी भी आभा है इसमें।

(4) **शमशेर बहादुर सिंह :** भाषा, बात बोलेगी, उषा, एक पीली शाम, लौट आओ धार।

(5) **भवानी प्रसाद मिश्र :** गीत फरोश, सन्नाटा, फूल कमल के, सतपुड़ा के जंगल, स्नेह शपथ।

(6) **नरेश मेहता :** प्रार्थना, किरन धेनुएँ, समय देवता—प्रारम्भिक अंश।

(7) **धर्मवीर भारती :** कनुप्रिया का प्रारम्भिक अंश, कुछ चंदन की कुछ कपूर की, सपना अभी भी (प्रारम्भिक पाँच कविताएँ)।

द्रुत पाठ : केदार नाथ अग्रवाल, शिवमंगल सिंह, 'सुमन' दुष्यन्त कुमार, आलोक धन्वा।

अनुक्रमणिका

आमुख

स्वातन्त्र्योतर हिन्दी कविता एवं नई कविता (काव्य-धाराएँ एवं प्रवृत्तियाँ)

हिन्दी खड़ी बोली के पद्य-साहित्य के अद्यावधि काल खण्ड को चार कालों एवं काल-खण्डों में विभाजित किया गया है :

१. वीरगाथा काल अथवा आदि काल (लगभग १०५० से लगभग १३७५ तक)

२. भक्तिकाल अथवा पूर्व-मध्यकाल (लगभग १३७५ से लगभग १७०० तक)

३. रीतिकाल, श्रृंगार-काल अथवा उत्तर-मध्यकाल (लगभग १७०० से लगभग १६०० तक)

४. आधुनिक काल (लगभग १६०० से प्रवहमान)

पद्य-साहित्य का काल-खण्डों में यह विभाजन काल-खण्डों में काव्य की प्रमुख प्रवृत्ति के आधार पर किया गया है, अर्थात लगभग १०५० से लगभग १३७५ तक के कालखण्ड में हिन्दी कवियों की प्रमुख प्रवृत्ति वीरगाथा-रचना की ओर रही। चन्दवरदाई वीर-रस के कवि थे, उनकी प्रमुख रचना 'पृथ्वीराज रासो' महाकाव्य, सम्राट् पृथ्वीराज (जिनके चन्द वरदाई राजकवि थे) के जीवन की वीरता की गाथाओं का प्रबन्धात्मक महाकाव्य है। इस काल की अन्य प्रमुख रचनाएँ 'बीसलदेव रासो' तथा 'परमाल रासो' में वीर गीत हैं, जो वीर-रस के कवि जगनिक की रचनाएँ हैं। इसी प्रकार १३७५ से १७०० तक के काल-खण्ड में काव्य-रचना-प्रवृत्ति 'भक्ति' दृष्टिगत होती है। कबीर, रैदास, दादू आदि भक्ति की निर्गुण ज्ञानाश्रयी शाखा से तथा जायसी, कुतबन एवं मंझन निर्गुण-भक्ति की प्रेमाश्रयी शाखा से संबद्ध थे। दूसरी ओर महाकवि तुलसी रामोपासक सगुण-भक्ति-धारा एवं महाकवि सूर, मीरा, रसखान आदि कृष्णोपासक सगुण-भक्ति-धारा के प्रमुख कवि थे। इसी प्रकार तृतीय काल-खण्ड (लगभग १७०० से लगभग १६००) का नामकरण 'रीतिकाल' अथवा 'श्रृंगार काल' इस काल-खण्ड की कविप्रमुख-प्रवृत्ति 'लक्षण-ग्रन्थों (रीति-ग्रन्थों) एवं श्रृंगार-रस-प्रमुखता' का ही संकेत देता है। जहाँ तक आधुनिक काल का प्रश्न है, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा प्रस्तुत उक्त काल-विभाजन के समय तक रीतिकाल के पश्चात् के काल के प्रवृत्ति की दृष्टि से संक्रमण-काल होने के कारण उक्त प्रवहमान काव्य-काल को 'आधुनिक काल' की संज्ञा दी गई, जो आधुनिक काल में किसी भी प्रमुख काव्य-प्रवृत्ति के न होने का संकेत देती है, किन्तु, लगभग १६०० से २००४ तक के १०० वर्ष से अधिक के कार्यकाल की प्रवृत्तियाँ समय-व्यतीति के साथ अब दृष्टिगत होने लगी हैं, जिनके आधार पर काव्य के अद्यतन काल 'आधुनिक काल' का काल-विभाजन अधुना प्रस्तुत किया जा सकता है, जो 'स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी-काव्य' के अध्ययन, विश्लेषण एवं मूल्यांकन की दृष्टि से उपादेय एवं आवश्यक है।

'आधुनिक काल का विभाजन एवं प्रवृत्तियाँ'

यद्यपि आधुनिक काल की कालावधि के विषय में विद्वानों में परस्पर मतैक्य नहीं है, तदपि विभाजन एवं प्रवृत्तियों की दृष्टि से वे प्रायः एकमत से आधुनिक काल का विभाजन निम्नवत् स्वीकारते हैं :

१. भारतेन्दु युग (सन् १८६५ से १९००)
२. द्विवेदी युग (सन् १९०० से १९१८)
३. छायावादी युग/प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी-युग (सन् १९१८ से १९३६)
४. छायावादोत्तर युग :
   (क) प्रगतिवादी युग सन् १९३६ से १९४३
   (ख) प्रयोगवादी युग सन् १९४३ से १९५१
   (ग) स्वातंत्र्योत्तर युग/नई कविता युग लगभग सन् १९५१ से।

भारत को स्वतंत्रता १५ अगस्त सन् १९४७ को प्राप्त हुई, इस दृष्टि से हिन्दी कविता के स्वातन्त्र्योत्तर युग अर्थात् 'नई कविता युग' का आरम्भ १५ अगस्त १९४७ के पश्चात् से ही माना जाना चाहिए, किन्तु, 'काव्य-धारा' कोई ऐसी परिस्थिति नहीं जिसको कानून बनाकर तत्काल प्रभाव से प्रतिबंधित कर दिया जाये, याकि तत्काल कोई नई स्थिति उत्पन्न कर दी जाये जिससे उसकी गति अवरुद्ध हो जाये। काव्य-धारा जल की उस अजस्र, अविरल स्वच्छन्द धारावत् है, जिसमें परिस्थिति-परिवर्तन स्वतः गतिपरिवर्तन को जन्म देता है एवं कवि अपने नवीन प्रतीक-विधान तथा नवोन्मिषित भाषा के माध्यम से नवीन निर्मलता एवं स्वच्छता। कारणस्वरूप स्वतंत्रता-प्राप्ति के तत्काल पश्चात् से काव्य की किसी नितान्त भिन्न धारा का उच्छ्वास हिन्दी-साहित्य में लक्षित नहीं होता। यही कारण है कि 'स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य-धारा' जिसको 'नई कविता' की संज्ञा दी गई है के प्रस्फुटन-तिथि काल के संबंध में विद्वानों के मत परस्पर भिन्न है, जो मुख्यतः निम्नवत् हैं :

स्वातंत्र्योत्तर काव्य-धारा (नई कविता) के जन्म-तिथि-काल संबंधी मत

प्रथम मत 'स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य' अथवा 'नई कविता' का आरम्भ सन् १९५१ 'द्वितीय सप्तक' के प्रकाशन से मानता है।

द्वितीय मत जिसके समर्थक डा. लक्ष्मीकान्त वर्मा तथा डा. जगदीश गुप्त हैं, के अनुसार नई कविता एवं स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी काव्य का विकास १९५३ में प्रकाशित 'नये पत्ते' तथा १९५४ में प्रकाशित साहित्यिक पत्रिका 'नई कविता' से मानना चाहिए।

तृतीय मत डा. शिवकुमार का है, जो १९५५ के पश्चात् लिखी गई हिन्दी कविता को 'नई कविता' मानता है। डा. मिश्र नई कविता को स्वतंत्र रूप से विकसित हुई धारा मानते हैं। वह इससे पूर्व प्रगतिवादी एवं प्रयोगवादी धाराओं से नई कविता का कोई संबंध नहीं मानते। इन्हीं से मिलता-जुलता मत श्री नरेश मेहता एवं श्री श्रीकान्त वर्मा का है, जो नई कविता की यद्यपि १९५५ की भाँति कोई सीमा-रेखा तो नहीं मानते किन्तु, 'नई कविता' को पूर्व प्रचलित धाराओं 'प्रगतिवाद' एवं 'प्रयोगवाद' से पूर्णतः स्वतंत्र विकसित धारा मानते हैं।

चतुर्थ मत डा. रामस्वरूप चतुर्वेदी, डा. शम्भूनाथ सिंह, डा. रघुवंश, डा. रमाशंकर तिवारी, डा. राममूर्ति त्रिपाठी एवं भारतभूषण अग्रवाल आदि विद्वानों का है, जो 'नई कविता' को 'प्रयोगवाद' का विकसित रूप मानते हैं।

पंचम मत के अनुसार समग्र छायावादोत्तर क. ~ को 'नई कविता' मानना चाहिए। श्री गिरजाकुमार माथुर, डा. नन्ददुलारे वाजपेयी एवं श्री बालकृष्ण राव इसी मत के हैं। ये विद्वान श्री हरिवंशराय बच्चन को संवेदना एवं शिल्प के आधार पर नई कविता का प्रारम्भिक प्रस्तोता मानते हैं।

'स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कविता' एवं 'नई कविता' के संबंध में उक्त मतों का विश्लेषण करने पर हम उक्त मतों के प्रतिपादक एवं समर्थक विद्वानों के दो वर्ग पाते हैं—एक वर्ग वह है जो 'नई कविता' को अत्याधुनिक काल की अन्तिम देन के रूप में स्वीकार कर उसके पूर्णतः स्वतंत्र अस्तित्त्व को मान्यता देता है, और दूसरा वह जो 'नई कविता' को छायावाद की अंतिम कड़ी से जोड़कर 'प्रगतिवाद' और 'प्रयोगवाद' के मध्य विकसित होते हुए 'नई कविता' के रूप में उसके पूर्ण उत्कर्ष को स्वीकारता है।

उक्त मतों का यदि हम विश्लेषण करें तो हम देखेंगे कि उक्त दोनों मतों में पूर्णतः सत्य कोई भी नहीं है, पर, अंशतः दोनों ही सत्य हैं, यथा—जब कोई नदी अपने उद्गम-स्थल से निकलती है, तो वह पूर्णतः निर्मल होती है, तब उसका एक स्वरूप होता है पर, जैसे-जैसे वह आगे बढ़ती जाती है उसका स्वरूप परिवर्तित होता जाता है—कहीं अनेक नदियाँ उसमें मिलती जाती हैं जो उसकी सहायक नदियाँ कहलाती हैं और कहीं वह मुख्य धारा स्वयं अनेक उपधाराओं में बिखर जाती है, और धीरे-धीरे वे उपधारायें स्वयं अपना स्वरूप धारण कर स्वतंत्रवत् बन जाती हैं और तब कोई कल्पना नहीं कर सकता कि वे एक दूसरे से संबद्ध हैं और उनका उद्गम एक ही है। जिन्होंने भाषा-विज्ञान का अध्ययन किया है वे जानते हैं कि भाषाओं के परिवार होते हैं और एक भाषा की विभाषाएँ, उप-भाषाएँ और बोलियाँ होती हैं और वही बोलियाँ विकसित और समृद्ध होकर, एक दिन अपने स्वतंत्र अस्तित्त्व की घोषणा कर स्वतंत्र-भाषा और राष्ट्र-भाषा बन जाती हैं। खड़ी बोली जो आज हमारी राष्ट्र-भाषा है और जिसकी कविता की आज हम बात कर रहे हैं, वह आरम्भ में मात्र एक बोली ही थी।

भाषा के समान ही कविता का स्वरूप-परिवर्तन है—कभी वह छायावादी थी, फिर प्रगतिवादी हुई, उसके पश्चात प्रयोगवादी और उससे भी स्वरूप परिवर्तन कर आज वह 'नई कविता' है। उसकी अपनी विषय-सामग्री है और अभिव्यक्ति के अपने माध्यम—भाषा और प्रतीक।

और इस कविता के इस स्वरूप-परिवर्तन का प्रवाह नई कविता तक आकर थम नहीं गया है, अपितु और वेगगामी हुआ है, जिसमें गीत, नव-गीत, गज़ल, क्षणिका आदि कविता की विविध विधाएँ तो विकसित हुई ही हैं, उसमें कविता के रूप, कुरूप, विद्रूप का एक अन्ध-अँधड़ प्रवहमान है, जिसमें कविता, अकविता, विकविता, ऐण्टी कविता, एबसर्ड कविता, नंगी कविता आदि, कविता के विविध रूप झाड़-झंकाड़ की तरह जगह व जगह उड़-उड़कर गिर रहे हैं और बिखर रहे हैं।

एक बात और वह यह कि हिन्दी कविता के विकास की इस आँधी में जहाँ कविता, उसके आदर्श और मानदण्ड स्थिर नहीं रह सके हैं, वहीं कवि भी इस आँधी में अस्थिर हुआ है, वह एक जगह स्थिर नहीं रह सका है। यही कारण है कि यदि कहीं छायावाद के प्रतिनिधि कवि पंत, निराला और प्रसाद अपने खेमे को छोड़कर प्रगतिवादियों के साथ खड़े दिखाई देते हैं (पंत 'परिवर्तन' एवं -निराला' वह तोड़ती पत्थर तथा 'भिक्षुक' जैसी प्रगतिवादी रचनायें प्रस्तुत करते हैं) तो वहीं दूसरी ओर अज्ञेय, मुक्तिबोध, शमशेर बहादुर,

भवानी प्रसाद और भारतभूषण अग्रवाल जैसे प्रगतिवादी कवि कभी 'प्रयोगवादी' कविता के वितान के नीचे खड़े दिखाई देते हैं, तो कभी 'नई कविता' के वितान के नीचे।

तात्पर्य यह कि 'स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी-कविता' अथवा 'नई-कविता' के जो तरुवर आज हमें सुविकसित, पल्लवित, पुष्पित और लहलहाते दिखाई देते हैं, वे आज के ही बीजारोपित तरु नहीं हैं, अपितु उनके मूल-तन्तु भूत के सुदूर विस्तार तक विस्तीर्ण हैं अर्थात् स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कविता अथवा नई कविता जिसे हम अद्यतन आधुनिक देन मानते हैं उसके रूप और स्वरूप के सम्यक ग्रहण के लिए उसको काव्य की विगत से नितान्त विच्छिन्न धारा के रूप में न देखकर भले ही सुदूर प्राचीन तक न जाकर, पर, प्रयोगवाद, प्रगतिवाद और छायावाद से किसी न किसी रूप में संबद्ध मानकर देखना चाहिए।

अतः 'स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी-कविता' अथवा 'नई कविता' के स्वरूप एवं अभिव्यक्ति-विधान को भली भाँति हृदयंगम करने के लिए हम प्रथम 'छायावाद' से 'नई कविता' तक के हिन्दी-कविता के विकास-क्रम का सिंहावलोकन करेंगे।

नई-कविता का सिंहावलोकन

छायावाद—'छायावाद' स्वतंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में पूर्व पीठिका के रूप में विद्यमान होने के कारण 'स्वतन्त्र्योत्तर हिन्दी-काव्य' अथवा 'नई कविता' के विशद-अध्ययन के लिए छायावाद एवं उसकी समकालीन परिस्थितियों का अध्ययन परमावश्यक है।

साहित्यकार अपने समय का प्रतिनिधि होता है, 'कविता का छायावाद-काल' भी इसका प्रतिवाद नहीं। प्रसाद, पंत, निराला, भगवतीचरण वर्मा एवं श्रीमती महादेवी इस काल के कीर्तिस्तम्भ हैं, जिनके काव्य में इस काल की प्रमुख प्रवृत्तियाँ स्पष्ट परिलक्षित हैं। छायावाद-काल राष्ट्रीय, धार्मिक एवं सामाजिक सभी दृष्टियों से निराशा का काल था।

राजनीतिक परिस्थितियाँ—प्रथम महायुद्ध समाप्त हो चुका था, जिसमें अँग्रेजों को विजयश्री प्राप्त हुई थी। भारतवासियों ने अंग्रेजी सरकार के इस आश्वासन से कि महायुद्ध की समाप्ति के पश्चात् भारत को स्वतंत्रता प्रदान कर दी जायेगी, इस महायुद्ध में गाँधी जी के नेतृत्व में अंग्रेजी सरकार का साथ दिया था, किन्तु, महायुद्ध में विजय प्राप्त करने के पश्चात्—ब्रिटिश सरकार द्वारा अपना वादा पूरा न करने पर भारतीय जनता ने १६१६ में गाँधी जी के नेतृत्त्व में प्रथम अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन आरम्भ किया था, जिसके असफल हो जाने पर अंग्रेजी शासन की दमन-नीति और अधिक उग्ररूप धारण कर चुकी थी।

धार्मिक एवं सामाजिक परिस्थितियाँ—भारत में ब्रिटिश-शासन सुदृढ़ हो चुका था। अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम से पश्चात्य सम्यता और संस्कृति भारतीय युवाओं के मन-मस्तिष्क को परिव्याप्त कर चुकी थी, किन्तु, सामान्य जन-समाज में ऊँच-नीच जाति-पाँति, धर्म, कुल-गोत्र तथा मान-मर्यादा की चट्टानें ज्यों की त्यों सिर ऊँचा किये खड़ी थीं।

भारतीय नारी की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। अंग्रेजी शिक्षा एवं पाश्चात्य सभ्यता तथा संस्कृति के प्रचार-प्रसार युग में भी वह अबला ही बनी हुई थी। उसको तदपि अपना जीवन-सहचर चुनने की स्वतंत्रता न थी। वह एक ओर अंध-समाज की रूढ़ियों से जकड़ी हुई थी और दूसरी ओर पुरुष-वर्ग के अत्याचारों से पद-दलित। पुरुष उसका परित्याग कर

सकता था (तलाक दे सकता था) पर स्त्री के लिए नर-राक्षस भी देवता था, उसके अत्याचारों ओर अनाचारों को मूकपशु की भाँति सहन करते रहना और आवाज़ भी न उठाना उसकी स्त्रीधर्मिता थी।

छायावादी काव्य की विशेषताएँ

उक्त परिस्थितियों में चारों ओर निराशा का वातावरण व्याप्त था, फिर, साहित्यकार और उसका साहित्य इससे अछूता कैसे रह सकता था। भले ही इस युग का साहित्यकार युग-वातावरण के विरुद्ध तीखा स्वर न उठा सका और युग का मार्गदर्शन तथा नेतृत्त्व न कर सका पर, प्रसाद हों या पन्त, निराला या महादेवी, युग-व्याप्त निराशा उनके काव्य में स्पष्ट परिलक्षित है।

'प्रसाद' की प्रबंधात्मक मुक्तक रचना 'आँसू' की निम्नलिखित पंक्तियों से उनकी वेदना की टीस छलकती है :

'जो घनीभूत पीड़ा थी
मस्तक में स्मृति सी छाई
दुर्दिन में आँसू बनकर
वह आज बरसने आई।'

'प्रसाद' का मन-मस्तिष्क और हृदय अपनी युग-परिस्थितियों से कितना वेदनाग्रस्त था उसकी मूक टीस अन्यत्र भी निम्नलिखित पंक्तियों में स्पष्ट सुनाई देती है :

"झंझा-झकोर गर्जन है
बिजली है, नीरद-माला
पाकर इस शून्य हृदय को
सबने आ घेरा डाला।

छायावादी कवि बाह्य-जगज्जन्य कठोर परिस्थितियों के अँधड़ का सामने डटकर मुकाबला कर पाने में अपने को असमर्थ पाकर पूर्णतः अन्तर्मुखी और व्यक्तिवादी हो गया है। इस सन्दर्भ में महादेवी जी कुछ काव्य-पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं :

मैं नीरभरी दुख की बदली
विस्तृत जग का कोई कोना
मेरा न कभी अपना होना
उमड़ी थी कल, बह आज चली।

अन्तर्मुखी मन और, वेदना, निराशा और टीस की व्याप्ति, वीर, भयानक, रौद्र, और वीभत्स रसों में नहीं होती, न ही उसकी अभिव्यक्ति कठोर और कटु शब्दों से होती है। अतः छायावादी कवि को अपने काव्य से चुन-चुन कर इनको बहिष्कृत करने एवं इनके स्थान पर अश्लीलतारहित वियोग-श्रृंगार तथा करुण रसों एवं कोमल-कान्त पदावली का आश्रय लेने को बाध्य होना पड़ा। उक्त विशेषता छायावादी कवियों की शैलीगत विशेषता है जो सभी छायावादी कवियों की भाषा में सर्वत्र लक्षित है।

छायावाद की अन्य विशेषताएँ—

१. सुख-दुख का समन्वय—छायावादी कवि निराशावादी होते हुए भी चिर-दुख का अभिलाषी नहीं, वह जिस तरह चिर-सुख की वाञ्छा नहीं रखता उसी प्रकार चिर-दुख भी नहीं चाहता। वह दुःख-सुख की आँख-मिचौनी का अभिलाषी है।

देखिये कविवर सुमित्रानन्दन पन्त की निम्नलिखित काव्यबद्ध उक्ति :

"मैं नहीं चाहता चिर-दुख
मैं नहीं चाहता चिर-सुख
सुख-दुख की आँख-मिचौनी
खोले जीवन अपना मुख।"

२. प्रकृति का मानवीकरण—छायावादी कवियों ने प्रकृति का मानवीकरण कर उसके संश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत किए हैं। देखिए एक चित्र प्रसाद के काव्य से—

बीती विभावरी, जाग री!
अम्बर-पनघट में डुबो रही
तारा-घट ऊषा - नागरी।
खग-कुल कुल कुल सा बोल रहा
किसलय का अंचल डोल रहा
लो यह लतिका भी भर लाई
मधु-मुकुल नवल-रस-गागरी

३. प्रकृति का कोमलतम रूप एवं संश्लिष्ट चित्रण—प्रकृति के मानवीकरण, कोमलतम रूप एवं संश्लिष्ट चित्रण की यह प्रवृत्ति सभी छायावादी एवं रहस्यवादी आधुनिक कवियों की प्रमुख प्रवृत्ति है, देखिये यही प्रवृत्ति रहस्यवादी कवित्री श्रीमती महादेवी वर्मा के काव्य में—

रुपसि! तेरा घन केश-पाश।
उच्छ्वसित वक्ष पर चञ्चल है
वक-पाँतों का अरविन्द हार।
तेरी निश्वासें छू भू को
बन जाती हैं मलयज-बयार

('वर्षा सुन्दरी के प्रति' कविता से)

प्रकृति चित्रण में रहस्यवादी भावना—इस युग के कवियों के प्रकृति-चित्रण में, चाहे वह प्रसाद हों या पंत या महादेवी, सर्वत्र रहस्यवाद की भावना व्याप्त है।

देखिये कविवर पंत के काव्य में :

स्तब्ध निशा में जब संसार
मग्न रहता शिशु सा नादान
न जाने नक्षत्रों से कौन
निमंत्रण देता मुझको मौन

(निशा-निमंत्रण से)

५. राष्ट्रीयता का स्वर—यद्यपि छायावादी काव्य में निराशा-व्याप्ति परिलक्षित है, पर, सर्वत्र निराशा ही निराशा हो, ऐसा भी नहीं। छायावादी-काव्य की पृष्ठभूमि की राजनीतिक परिस्थितियों में क्योंकि विदेशी शासन को देश से समाप्त करने की भावना निहित थी, अतः छायावादी काव्य में राष्ट्र के प्रति उत्सर्ग-भावना के स्वर भी प्रस्फुटित थे।

देखिए, भारतीय आत्मा कविवर माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य की उत्सर्ग-भावना से ओतप्रोत अग्रलिखित पंक्तियाँ :

"मुझे तोड़ लेना वनमाली
उस पथ पर तुम देना फेंक
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने
जिस पथ जाते वीर अनेक।"

६. **विपरीत परिस्थितियों में भी धैर्य की प्रेरणा**—छायावादी कवियों के काव्य में विपरीत परिस्थितियों में भी धैर्य रखने की प्रेरणा यत्र-तत्र प्राप्त होती है, देखिये **प्रसाद** के महाकाव्य **'कामायनी'** में श्रद्धा मनु को सजग करती है :

"हार बैठे जीवन का दाँव
जीतते जिसको मर कर वीर ?"

अन्यत्र भी 'कामायनी' में श्रद्धा मनु को विपरीत परिस्थितियों में भी निराश और अकर्मण्य न हो उनका सामना करते हुए कर्मनिरत रहने की प्रेरणा देती है, यथा—**'कर्म का भोग, भोग का कर्म, यही जड़ चेतन का आनन्द'।**

न केवल प्रसाद जी और श्री माखनलाल चतुर्वेदी अपितु कविवर मैथिलीशरण गुप्त, सोहनलाल द्विवेदी, एवं राष्ट्रकवि दिनकर के काव्य में भी राष्ट्रीयता के स्वर मुखर थे। देखिए—अँग्रेजी-दासता में अपने एवं अपने राष्ट्र के स्वाभिमान को भुला बैठे भारतवासियों के हृदय को 'भारत भारती' में अपनी तीखी वाणी के वाणों से विद्ध करते हुए गुप्त जी कहते हैं—

"जिसको न जिन गौरव तथा निज देश का अभिमान है।
वह नर नहीं, है पशु निरा, और मृतक समान है।"

'बक-संहार' में भी गुप्त जी का यही तीखा स्वर है। बकासुर द्वारा प्रजा पर किए जाने वाले अत्याचार अँग्रेजी शासनकाल में भारतीय जनता पर किये जा रहे अंग्रेजों के अत्याचार के व्यञ्जक हैं, जिनके समाधान के लिए अँग्रेजों के सामने अधिकारों के लिए गिड़गिड़ाने के स्थान पर अंग्रेजी शासन को उखाड़ फेंकना ही गुप्त जी के शब्दों में एक-मात्र उपाय है।

देखिए 'बक संहार' में गुप्त जी का तीखा स्वर—

"राजा प्रजा का एक प्रतिनिधि मात्र है
यदि वह प्रजापालक नहीं तो त्याज्य है।
हम दूसरा राजा चुनें, जो सब तरह सबकी सुने
कारण प्रजा का ही असल में राज्य है।"

कविवर सुमित्रानन्दन पन्त के काव्य में भी, भले ही कोमल-कान्त पदावली में हो, 'मानवतावाद' एवं 'मुक्ति' की आवाज सुनाई देती है।

देखिये कुछ पंक्तियाँ—

मुक्त करो नारी को मानव! मुक्त करो," तथा—

"मैं नव-मानवता का संदेश सुनाता,
स्वाधीन-लोक की गौरव गाथा गाता।"

इस प्रकार छायावादी पंत 'युगवाणी' तथा 'युगान्त' तक आते-आते पूर्णतः प्रगतिवादी दिखाई देने लगते हैं। पंत जी की काव्यधारा में लक्षित इस परिवर्तन पर व्यंग करते हुए डा. गणपति चन्द्र गुप्त ने तो इसे उनका धर्म-परिवर्तन ही कहा है। किन्तु हम डा. गणपति चन्द्र जी के इस व्यंग-कथन को उनकी स्थूल-दृष्टि ही मानते हैं, क्योंकि कवि सामान्य-जन

नहीं, वह सामान्य-जन से ऊपर है। उसका धर्म जन-साधारण का स्थूल धर्म नहीं होता, उसका धर्म युग-धर्म होता है। वह युग-प्रतिनिधि होता है। युग-प्रतिनिधि होने के कारण एक ओर उसके काव्य में युग लक्षित होता है, दूसरी ओर युग-प्रतिनिधित्त्व। कवि केवल आकाशचारी ही नहीं होता, वह युगधर्मा राम और कृष्ण होता है जो युग-शोषक रावण और कंस से युद्ध को सदैव तत्पर रहता है। यही कारण है कि न केवल गुप्त, प्रसाद और पन्त अपितु निराला, नरेन्द्र तथा दिनकर के काव्य में भी हमें युग-दर्शन तथा युग-परिवर्तन का उद्घोष सुनाई देता है।

देखिये कविवर 'निराला' के काव्य से कुछ पंक्तियाँ :

"सिंही की गोदी से
छीनता रे शिशु कौन ?
एक मेषमाता ही
रहती है निर्निभेष
जन्म पर अपने अभिशप्त
तप्त आँसू बहाती है।
सिंह की माँद में
आया है स्यार
जागो फिर एक बार।"

—निराला

नरेन्द्र शर्मा के काव्य में भी युग-दर्शन की एक झलक देखिए :

"है जीने का अधिकार नहीं, उसको किस्मत की मर्ज़ी पर।
जड़ रूढ़िवाद के शव को जो जीवित कहता है, आह! आज।"

—नरेन्द्र शर्मा

इसी प्रकार राष्ट्र कवि कविवर रामधारी सिंह दिनकर के काव्य में युग-विद्रोह की एक झलक देखिये :

"मेरे नगपति, मेरे विशाल
कह दे ! शंकर से आज करें वह प्रलय-नृत्य फिर एक बार,
सारे भारत में गूँज उठे हर हर बम का फिर महोच्चार
ले अँगड़ाई उठ ! हिले धरा कर विराट स्वर में निनाद
तू शैल विराट! हुँकार भरे, फट जाये कुहा भागे प्रमाद।"

—दिनकर

छायावादोत्तर-काल

(१) प्रगतिवाद—पूर्वोक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'प्रगतिवाद' के अंकुर 'छायावाद-काल' में ही फ़ूटने लगे थे, पर वे छायावाद की रेशमी चादर के नीचे दबे, सिकुड़े पड़े थे, किन्तु, युग-प्रभञ्जन ने उस वितान को तोड़ फेंका, परिणामस्वरूप अंकुर बढ़े और वृक्ष के रूप में लहलहाने लगे।

प्रगतिवाद का अर्थ और भारतीय साहित्य—'प्रगति' का शब्दिक अर्थ है 'प्रकृष्ट गति' अर्थात् तीव्र गति से आगे बढ़ना। दूसरे शब्दों में काल-परिवर्तन की दृष्टि से युगों-युगों से चली आ रही निरर्थक एवं अनुपयोगी हो गई सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक परंपराओं, रूढ़ियों, बंधनों को तोड़कर समाज के विकास की बात करना 'प्रगतिवाद'

है, जिसे प्रगतिशील विचार-धारा कह सकते हैं। इस दृष्टि से 'प्रगतिवाद' भारत के धर्म, समाज तथा साहित्य की दृष्टि से कोई 'नया-वाद' नहीं है। संस्कृत-साहित्य में शूद्रक का 'मृच्छकटिक' तत्कालीन उपेक्षित-वर्ग के प्रति सहानुभूति का आदर्श उदाहरण है। हिन्दी-साहित्य में भी 'तुलसी' और 'कबीर' इस दृष्टि क्रान्तिकारी कवि हैं।

आधुनिक परिवेश में 'प्रगतिवाद' का अर्थ एवं प्रगतिवादी साहित्य की सामान्य प्रवृत्तियाँ—आधुनिक परिवेश में 'प्रगतिवाद' शब्द साम्यवादी विचार-धारा के लिए रूढ़ सा हो गया है। इस रूढ़ अर्थ में 'प्रगतिवादी साहित्य' की सामान्य-प्रवृत्तियाँ निम्नवत् हैं :

१. पूर्ण भौतिकतावादी दृष्टिकोण (यथार्थ का वस्तुगत चित्रण)।

२. वर्ग-संघर्ष एवं हिंसक-क्रान्ति मे विश्वास।

३. सर्वहारा-वर्ग के प्रति सहानुभूति एवं पूँजीवादी-वर्ग के प्रति घृणा-भाव (मानवतावादी दृष्टिकोण)

४. नारी को शोषित रूप में 'प्रदर्शित करने की प्रवृत्ति।

५. सरल शैली एवं जन-भाषा।

६. लक्षणा, व्यञ्जना एवं नवीन प्रतीक-विधान।

हिन्दी-साहित्य में आधुनिक प्रगतिवादी चेतना-आन्दोलन—आधुनिक हिन्दी-साहित्य में 'प्रगतिवादी चेतना-आन्दोलन' का श्रीगणेश सन् १९३६ के लगभग लखनऊ में 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना के साथ हुआ, जिसके प्रथम-अधिवेशन की अध्यक्षता प्रेमचन्द जी ने की। हिन्दी-साहित्य के सभी अंगों में नवीन-चेतना के स्वर मुखरित हुए। अंततः माव, विषय एवं कला सभी दृष्टियों से प्रगतिवादी साहित्य के मानदण्ड छायावादी काव्य से पूर्णतः भिन्न हो गये।

प्रगतिवादी काव्य के मानदण्ड

भाव एवं विषय की दृष्टि से—शोषक-वर्ग की विलासिता और क्रूरता, शोषित-वर्ग की सड़ी गली ज़िन्दगी के रोमांचक चित्र, पूँजीवादी-वर्ग द्वारा सर्वहारा-वर्ग के शोषण की गाथा, भारतीय नारी की दासतापूर्ण करुण दशा, विध्वंस और विप्लव का गान, बंगाल के अकाल का लोमहर्षक चित्रण, रूस की प्रशस्ति आदि प्रगतिवादी-काव्य के प्रमुख वर्ण्य-विषय रहे।

कला-पक्ष की दृष्टि से :

१. अधिकांश प्रगतिवादी कवियों ने काव्य के संवेदनात्मक आधार को छोड़कर बौद्धिक तथा सैद्धान्तिक आधार ग्रहण कर लिया था।

२. प्रगतिवादी-साहित्य में गहनता का अभाव हो गया था और प्रचारात्मकता एवं बहिर्मुखता की बाढ़ आ गई थी।

३. भावाभिव्यक्ति के लिए यथार्थ जीवन के बहिर्मुखी प्रतीकों की योजना कर ली गई थी। यथा 'गुलाब' कैपिटलिस्ट-वर्ग का प्रतीक मान लिया गया था।

४. कोमल-भावों एवं कोमल पदावली का चुन-चुनकर बहिष्कार किया गया था।

५. समग्र प्रगतिवादी साहित्य में एक जैसी अभिव्यक्तियों की बहुलता हो गई थी।

६. काव्य की भाषा सार्वजनीन थी, जिसमें विभिन्न भाषाओं के जन-प्रचलित शब्दों का बाहुल्य था।

लक्ष्य की दृष्टि से : १. कविता एकान्त अर्थात् मानसिक तृप्ति का साधन-मात्र न रहकर, सामूहिक संघर्ष के लिए ललकार का साघन बन गई थी।

२. 'कला कला के लिए' सिद्धान्त को खोखला मानकर 'साहित्य जीवन के लिए' सिद्धान्त को मान्यता प्रदान की गई थी।

३. सामाजिक और आर्थिक चिन्तन को प्रगतिवादी-काव्य के लक्ष्यों में मान्यता प्रदान की गई थी।

४. 'मानव की स्वार्थ-भावना के कारण ही सामाजिक और आर्थिक विषमता फैलती है' इस विश्वास को दृढ़ता प्रदान करना प्रगतिवादी काव्य के प्रमुख लक्ष्यों में था।

हिन्दी-साहित्य के उल्लेखनीय प्रगतिवादी कवि एवं उनका काव्य

आज हिन्दी का प्रगतिवादी साहित्य अत्यंत समृद्ध है। कविवर मैथिलीशरण गुप्त से लेकर, माखनलाल चतुर्वेदी, भगवतीचरण वर्मा, सोहनलाल द्विवेदी, प्रसाद, पंत, महादेवी, निराला, रामधारी सिंह दिनकर, नरेन्द्र शर्मा, बालकृष्ण शर्मा नवीन, शिवमंगल सिंह सुमन, रामेश्वर शुक्ल अंचल, गिरिजाकुमार माथुर तथा चन्द्रकिरण सौनरिक्सा आदि प्रगतिवादी हिन्दी कवियों एवं कवित्रियों की एक लम्बी पंक्ति है।

यों तो प्रगतिवादी काव्य की सामान्य-प्रवृत्तियाँ, मानदण्ड, एवं भाव तथा कला-पक्ष की सामान्य विशेषताएँ इन सभी कवियों में किसी न किसी रूप में लक्षित हैं तथापि सूक्ष्म-विश्लेषण करने पर ये कवि और इनका काव्य दो उप-धाराओं में विभक्त दिखाई देता है—एक उपधारा वह है जो प्रगतिवाद की नवीन धारा की मुख्य विशिष्टताओं को अपने में समाविष्ट करते हुए भी भारतीय संस्कृति, गौरव, स्वाभिमान और राष्ट्र-भक्ति की पृष्ठभमि पर प्रतिष्ठित है तथा दूसरी वह जो पूर्णतः मार्क्सवादी विचार-धारा की पिछलग्गू है। मैथिलीशरण गुप्त, महादेवी, प्रसाद, पंत और निराला प्रथम उपधारा संबद्ध कवि हैं, जबकि दिनकर, सुमन, अंचल, नवीन, नरेन्द्र शर्मा, गिरिजाकुमार माथुर, सौनरिक्सा आदि मार्क्सवादी साम्यवाद की पृष्ठभूमि पर खड़े हैं। दोनों प्रगतिवादी उपधाराओं का अन्तर उक्त उपधाराओं के प्रतिनिधि-कवियों के काव्य के उद्धरणों से पर्याप्त रूप में स्पष्ट हो जायेगा :

देखिए, कविवर सुमित्रानन्दन पंत के प्रगतिवादी काव्य की कुछ पंक्तियाँ—

"ताक रहे गगन ?
मृत्यु नीलिमा गहन ? निस्पन्द शून्य, निर्जन, निःस्वन ?
देखो! भू को, स्वर्गिक भू को, मानव-पुण्य-प्रसू को।"

उक्त पंक्तियों में कविवर पंत एक ओर पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति की ओर उन्मुख दिग्भ्रमित भारतवासी को भारत की गौरवपूर्ण सभ्यता और संस्कृति की ओर लौटने की तथा दूसरी ओर कल्पना के आकाश से यथार्थ के धरातल पर उतरने की प्रेरणा देते हैं।

इसी प्रकार अपने देश की गौरवानुभूति से अभिभूत प्रसाद के प्रगतिवादी काव्य की कुछ पंक्तियाँ देखिये :

"अरुण यह मधुमय देश हमारा,
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।
सरस तामरस गर्भ विभा पर नाच रही तरु-शिखा मनोहर,
छिटका जीवन-हरियाली पर मंगल-कुमकुम सारा।"

दूसरी ओर कविवर निराला की 'भिक्षुक' शीर्षक कविता में 'प्रगतिवाद' के अन्तर्गत यथार्थ का एक मार्मिक चित्र देखिए :

"वह आता
दो टूक कलेजे के करता, पथ पर पछताता आता।

पेट-पीठ दोनों मिलकर हैं एक।
चल रहा लकुटिया टेक
मुट्ठी भर दाने को, भूख मिटाने को
मुँह-फटी झोली को फैलाता
दो टूक कलेजे के करता, पछताता पथ पर आता।

अब दोनों उप-धाराओं के अन्तर के स्पष्टीकरण के लिए मार्क्सवादी साम्यवाद के धरातल पर खड़े प्रगतिवाद' के प्रतिनिधियों के काव्य से कुछ उदाहरण देखिए :

श्वानों को मिलता दूध-दूही बच्चे भूखे अकुलाते हैं
माँ की हड्डी से ठिठुर चिपक, जाड़ों की रात बिताते हैं।
युवती की लज्जा वसन बेच अब ब्याज चुकाये जाते हैं
मिल-मालिक तेल फुलेलों पर पानी सा द्रव्य बहाते हैं।

—दिनकर

'निराला' के प्रगतिवादी काव्य में भी 'मार्क्सवादी साम्यवाद' के प्रमुख तत्त्व वर्गवाद का चित्रण प्रगतिवादी प्रतीक-विधान मे यत्र-तत्र मिलता है, एक उदाहरण देखिए

"अबे सुन बे गुलाब !
भूल मत, गर पायी खुशबू रंगो आब
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट !
डाल पर इतरा रहा है कैपीटलिस्ट !"

—निराला

उक्त उद्धरण में 'गुलाब' पूँजीपति-वर्ग का तथा 'खाद' सर्वहारा-वर्ग का प्रतीक है।

शिवमंगल सिंह 'सुमन' के प्रगतिवादी काव्य से उद्धृत कुछ पंक्तियाँ देखिए :

"बर्लिन अब नजदीक है
फासिस्तों की काल-रात्रि में घोर-घटा घिर आई।
चली लाल सेना, ज्यों चलती सावन में पुरवाई।"

उपर्युक्त पंक्तियों में साम्राज्यवाद के विरुद्ध साम्यवादी लाल सेना की प्रशस्ति है। कुछ अन्य उदाहरण देखिए :

"दुनियाँ के मजदूर भाइयों ! सुन लो आज हमारी बात
सिर्फ एकता में ही बसता, इस दुनियाँ के सुख का राज।"

—चन्द्र किरण सौनरिक्सा

"इन खलिहानों में गूँज रही, किन अपमानों की लाचारी
हिलती हड्डी के ढाँचों ने, पिटती देखी घर की नारी,
युग-युग के अत्याचारों की, आकृतियाँ जीवन के तल में
घिर-घिर कर पुंजीभूत हुईं, ज्यों रजनी के छाया-छल में।

—रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

मार्क्सवादी साम्यवाद के आधार वाले हिन्दी-काव्य में बौद्धिकता की अधिकता है। भाव एवं अनुभूति-पक्ष की उपेक्षा के कारण काव्य के आवश्यक तत्त्व रागात्मकता का इसमें अभाव है।

(2) **प्रयोगवाद** 'प्रगतिवाद' के पश्चात जब हम प्रयोगवाद' के अध्ययन की दिशा में आगे बढ़ते हैं, तो अनेक प्रश्न उत्पन्न होते हैं, यथा-साहित्य (काव्य) के क्षेत्र में 'प्रयोगवाद' क्या है ? क्या यह काव्य का एक विशिष्ट शिल्प-विधान मात्र है ? क्या द्विवेदी-युग की समाप्ति के पश्चात् का समस्त काव्य-काल इसकी सीमा में आबद्ध है ? अथवा क्या इसकी सीमा का आरम्भ छायावादोत्तर-काल से आरम्भ होता है ? क्या प्रगतिवाद ओर प्रयोगवाद परस्पर सम्बद्ध हैं ? अथवा नितान्त भिन्न ? क्या 'प्रयोगवाद' और 'नई कविता' एक ही तात्पर्य के व्यंजक हैं ? क्या 'नई कविता' 'प्रयोगवाद' की ही विकसित अवस्था है ? अथवा दोनों नितान्त भिन्न हैं ? आदि-आदि। इन प्रश्नों के समाधान के लिए जब हम साहित्य-समीक्षकों की ओर उन्मुख होते हैं तो इस सम्बन्ध में हम प्रमुख रूप से समीक्षकों के पाँच वर्ग पाते हैं :

प्रथम वर्ग—यह वर्ग प्रगतिवाद, प्रयोगवाद तथा नई कविता को परस्पर अभिन्न मानता है।

इस मत के प्रमुख प्रतिपादक हैं श्री गिरजाकुमार माथुर, श्री बालकृष्ण राव तथा आचार्य नन्ददुलारे बाजपेई। श्री माथुर तथा श्री राव के अनुसार छायावादोत्तर रचित समस्त काव्य-कलाप 'नई कविता' में समाहित है।

श्री बाजपेई के अनुसार 'छायावादी हिन्दी कविता' के पश्चात् जो नई प्रवृत्तियाँ कविता में आई हैं, अथवा आ रही हैं, वे बहुत कुछ क्रमागत-धारा के साथ अनुस्यूत हो गई हैं।

इस प्रकार ये तीनों ही विद्वान १९३६ में कविवर पन्त के 'युगान्त' के पश्चात् से 'छायावाद' का अन्त मानते हैं, तथा उसके पश्चात हिन्दी कविता के क्षेत्र में रचित समस्त सहित्य को 'नई कविता' की मान्यता देते हैं।

द्वितीय वर्ग—यह वर्ग 'नई कविता' का आरम्भ १९३६ के पश्चात् से न मानकर १९५३ के पश्चात् से मानता है। इस मत के प्रमुख प्रतिपादकों में डा. शिवकुमार मिश्र, श्री नरेश मेहता, श्रीकान्त वर्मा, डॉ. जगदीश गुप्त तथा डॉ. लक्ष्मीकान्त वर्मा का नाम लिया जा सकता है। उक्त विद्वान् 'नई कविता' का स्वतंत्र अस्तित्त्व रेखांकित करते हैं तथा पूर्व प्रचलित 'प्रगतिवाद' एवं 'प्रयोगवाद' से 'नई कविता' का कोई आत्यन्तिक सम्बन्ध नहीं मानते। डॉ. जगदीश गुप्त 'नई कविता' का आरम्भ १९५३ मे प्रकाशित 'नये पत्ते' से डॉ. लक्ष्मीकान्त वर्मा १९५४ में 'नई कविता' के प्रकाशन से तथा डॉ. शिवकुमार मिश्र १९५५ के पश्चात् प्रकाशित हिन्दी कविताओं से मानते हैं। इसी से मिलता-जुलता एक मत यह भी है कि 'प्रगतिवाद' और 'प्रयोगवाद' की प्रवृत्तियाँ परस्पर प्रतिकूल हैं, एवं 'नई कविता' में इनका समाहार किसी भी प्रकार संभव नहीं है।

तृतीय वर्ग—तीसरा वर्ग डॉ. रामधारी सिंह दिनकर एवं डा. उर्मिलेश आदि विद्वानों का है जो 'प्रयोगवाद' तथा 'नई कविता' को अभिन्न मानता है एवं इसका जन्म 'प्रगतिवाद' से मानता है। डा. दिनकर का इस संबंध में कथन है—"प्रयोगवाद का जन्म 'प्रगतिवाद' की कुक्षि से हुआ है"। डा. उर्मिलेश 'नया सप्तक व्याख्या और विवेचन के नये आयाम' की भूमिका में यह कहकर उक्त मत का समर्थन करते हैं :

"यह (मत) वास्तव में बिल्कुल सत्य है, क्योंकि आरम्भ में अज्ञेय, मुक्तिबोध, शमशेर, भवानीप्रसाद मिश्र, भारतभूषण अग्रवाल आदि प्रगतिशील खेमे के ही माने जाते थे।"

चतुर्थ वर्ग—यह वर्ग डा. रघुवंश, डा. शम्भुनाथ सिंह एवं डा. रमाशंकर तिवारी आदि विद्वानों का है जो 'नई कविता' को तो 'प्रयोगवाद' का विकास एवं उसकी विरासत मानता

है पर, 'प्रयोगवाद' किस काव्य-धारा का विकास अथवा विरासत है ? अथवा क्या वह प्रगतिवाद से भिन्न कोई स्वतंत्र काव्य धारा है ?' इस विषय में मौन है।

पंचम वर्ग—डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी एवं भारतभूषण अग्रवाल आदि कुछ विद्वानों का पाँचवाँ वर्ग है, जिसका मत है कि 'नई कविता' केवल 'प्रयोगवाद' की विरासत न होकर 'प्रयोगवाद' एवं 'प्रगतिवाद' की सामूहिक विरासत है।

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी काव्य : स्वरूप और विकास

प्रयोगवादी कविता—हमारे मत में 'छायावाद' हो या 'प्रगतिवाद' या फिर 'प्रयोगवाद' या 'नई कविता' इनकी अनुभूतियाँ भिन्न हो सकती हैं, विषय भिन्न हो सकते हैं, अभिव्यक्ति में भाव-तत्त्व, कल्पना-तत्त्व एवं बुद्धि-तत्त्व में से किसी अथवा किन्हीं तत्त्वों की मात्रा कम या अधिक हो सकती है, अभिव्यक्ति के माध्यम—भाषा, शैली और प्रतीक भिन्न हो सकते हैं, पर स्वरूप की यह उत्तरोत्तर भिन्नता अन्ततः समय की दृष्टि से काव्य का विकास ही है, चाहे यह ऊर्ध्वगति की ओर हो अथवा फिर अधोगति की ओर।

१५ अगस्त १९४७ को भारत स्वतंत्र हुआ और २६ जनवरी १९५० को गणतंत्र घोषित हुआ। उस समय काव्य की दिशा में तत्काल तो कोई परिवर्तन नहीं हुआ, पर इस बीच १९४३ में अज्ञेय के संपादकत्त्व में 'प्रथम तार-सप्तक' का प्रकाशन हो चुका था, जिसमें 'प्रयोगवादी कविता' जन्म ले चुकी थी। जिस प्रकार 'छायावाद' में यथार्थ के विरोध की अतिशयता एवं स्थूलता के सभी स्तरों पर आत्यन्तिक बहिष्कार ने 'प्रगतिवाद' को जन्म दिया था, उसी प्रकार जब 'प्रगतिवाद' साहित्य के लक्ष्यों से पूर्ण रूप से नाता तोड़ राजनीतिक साम्यवाद के प्रचार-प्रसार के माध्यम के रूप में परिवर्तित हो गया तो साहित्य-जगत में 'प्रगतिवाद' के विरोध का स्वर मुखर हुआ जो १९५१ में 'दूसरे सप्तक' के रूप में सामने आया। प्रगतिवाद के विरोध में मुखर हुआ यह स्वर काव्य-जगत में 'प्रयोगवाद' के नाम से जाना जाता है। हमारे विचार में स्वातंन्त्र्योत्तर हिन्दी काव्य का सूत्रपात यहीं से माना जाना चाहिए।

'दूसरे तार सप्तक' में कवि थे हरि नारायण व्यास, भवानी प्रसाद मिश्र, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश मेहता, शकुन्तला माथुर, रघुवीर सहाय तथा धर्मवीर भारती और सम्पादक थे सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय'।

नई कविता १९५४ में अज्ञेय जी के सम्पादकत्त्व में ही 'तीसरे तार-सप्तक' का प्रकाशन हुआ, जिसमें निम्नलिखित कवियों की कविताएँ संकलित थीं :

प्रयाग नारायण त्रिपाठी, कीर्ति चौधरी, मदन वात्स्यायन, केदारनाथ सिंह, कुँवर नारायण, विजयदेव नारायण साही तथा सर्वेश्वर दयाल सक्सेना।

१९५४ में ही डा. जगदीश गुप्त तथा श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी के संपादन में प्रयोगवादी कविताओं का एक संकलन प्रकाशित हुआ, जिसे 'नई कविता' नाम दिया गया। तभी से 'प्रयोगशील कविता' को 'नई कविता' कहा जाने लगा। यद्यपि 'अज्ञेय' जी स्वयं प्रयोगवादी कविता के सूत्रधार थे, पर, जब 'प्रयोगवादी' और 'प्रगतिवादी' कविता की कटुं आलोचना होने लगी तो १९६२ में प्रयोगवादी तथा प्रगतिवादी कविता के नये नामकरण 'नई कविता' की वकालत करते हुए, 'नई कविता' नाम से आकाशवाणी के इलाहबाद केन्द्र से प्रसारित वार्ता में उन्होंने कहा—"इस कविता को हम 'प्रयोगशील', 'प्रगतिशील' आदि नहीं कहना चाहते, क्योंकि 'प्रगतिवाद' राजनीतिक बिल्ला है और 'प्रयोगवाद' आक्षेप।

नई कविता के कवि—जिस प्रकार अनेक 'छायावादी' कालान्तर में बदलती युग-परिस्थितियों के फलस्वरूप 'प्रगतिवादी' बन गये और 'प्रगतिवादी' 'प्रयोगवादी' उसी प्रकार पुराने प्रयोगवादी भी 'नई कविता' के कवि बन गये, और, साथ-साथ उनमें नये रचनाकार भी जुड़ते गये। इस प्रकार 'नई कविता' के कवियों में श्री अज्ञेय, गजानन माधव मुक्तिबोध, नेमिचन्द जैन, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, रामविलास शर्मा, भवानी प्रसाद मिश्र , शकुन्तला माथुर, हरिनारायण व्यास, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश मेहता, रघुवीर सहाय, धर्मवीर भारती, सर्वेश्वर दयाल, सक्सेना, गिरजाकुमार माथुर, लक्ष्मी कान्त वर्मा, बालकृष्ण राव, विजय देव नारायण साही, कुँवरनारायण, जगदीश गुप्त, दुष्यन्त कुमार, कीर्ति चौधरी आदि हैं। नये जुड़ने वाले रचनाकारों में मुद्राराक्षस, अनन्तकुमार 'पाषाण' तथा राजेन्द्र किशोर आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय है।

साठोत्तरी कविता—लगभग एक दशक में ही सन् ६० के पश्चात 'नई कविता' की गतिशीलता भी ठहराव की स्थिति में आ गई। उसमें अनुभूति की मौलिकता और नवीनता जड़वत हो गई। परिणामस्वरूप 'नई कविता' के विरुद्ध भी अनेक आन्दोलन उठ खड़े हुए। इन आन्दोलनों के सामूहिक रूप को 'साठोत्तरी कविता' अथवा 'साठोत्तरी पीढ़ी' नाम से अभिहित किया गया।

साठोत्तरी कविता में प्रमुख रूप से कविता के निम्नलिखित आन्दोलन सम्मिलित थे- अभिमन्य कविता, पीढ़ी की कविता, अस्वीकृत कविता, वीर कविता, युयुत्सावादी कविता, भूखी पीढ़ी की कविता, ठोस कविता, ताज़ी कविता, सनातन सूर्योदयी कविता, प्रतिबद्ध कविता, एब्सर्ड कविता तथा अकविता आदि।

स्वतंत्र्योत्तर हिन्दी कविता का स्वरूप

अभी तक हमने 'स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता' (नई कविता) की पृष्ठभूमि एवं उसकी विकास-यात्रा पर प्रकाश डाला, अब आगे हम उसके स्वरूप पर विचार करेंगे।

१९४७ में भारत स्वतंत्र हुआ। इसके पश्चात् ३, ४ वर्षों तक हिन्दी-कविता में कोई नया दिशाबोध नहीं होता, किन्तु, १९५१ में 'दूसरे सप्तक' के प्रकाशन के रूप में 'प्रगतिवाद' के विरोध का स्वर तीव्र रूप में मुखर हुआ जो हिन्दी-साहित्य-जगत में 'प्रयोगवाद' के नाम से जाना जाता है। यहीं से 'स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य' का सूत्रपात माना जाता है। १९५४ में श्री जगदीशचन्द्र गुप्त एवं रामस्वरूप चतुर्वेदी के संपादकत्त्व में प्रकाशित प्रयोगवादी कविताओं के संकलन को 'नई कविता' नाम दिये जाने से एवं १९६२ में अज्ञेय जी के 'नई कविता' शीर्षक से प्रसारित आकाशवाणी-वार्ता से प्रयोगवादी कविता के लिए 'नई कविता' नाम रूढ़ हो गया।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी-काव्य (नई कविता) की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

'स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी-काव्य' जिसे 'प्रयोगवाद' अथवा 'नई-कविता' के नाम से अभिहित किया गया है, की प्रमुख प्रवृत्तियों को हम दो रूपों में देख सकते हैं १. विषयगत अथवा भाव-पक्ष की प्रवृत्तियाँ तथा २. कलापक्ष की प्रवृत्तियाँ।

भाव-पक्ष की प्रवृत्तियाँ—

(१) **घोर वैयक्तिकता**—प्रयोगवादी कविता व्यक्ति को सामाजिक प्रतिबद्धता से दूर ले जाना चाहती है। इसमें व्यक्ति की स्वाधीनता का स्वर मुखर रूप से प्रस्फुटित हुआ

है। इसके प्रमुख विषय निजी मान्यताओं, विचारधाराओं एवं अनुभूतियों का प्रकाशन है। आत्म-विज्ञापन की प्रवृत्ति प्रयोगवादी कवियों की प्रमुख विशेषता है।

देखिये हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' की 'नदी के द्वीप' कविता की कुछ पंक्तियाँ–

"हम नदी के द्वीप हैं.....
किन्तु, हम हैं द्वीप,
हम धारा नहीं हैं।
स्थिर समर्पण है हमारा। हम सदा से द्वीप है स्त्रोतस्विनी के।
किन्तु, हम बहते नहीं हैं। क्योंकि बहना रेत होना है।
हम बहेंगे तो रहेंगे ही नहीं।
पैर उखड़ेंगे। प्लवन होगा। ढहेंगे। सहेंगे। बह जायेंगे।

उक्त पंक्तियों में व्यक्ति-अस्तित्त्व का स्वर मुखर रूप से प्रस्फुटित हुआ है।

(२) **गहन अन्तर्वेदना**–प्रयोगवादी कवि में कोरी भावुकता नहीं है, उसमें गहरी अन्तर्वेदना की टीस है।

देखिए गजानन माधव मुक्तिबोध की 'मुझे कदम कदम पर' शीर्षक कविता की कुछ पंक्तियाँ :

"मुझे भ्रम होता है कि प्रत्येक पत्थर में
चमकता हीरा है,
हर-एक छाती में आत्मा अधीरा है,
प्रत्येक सुस्मित में विमल सदा नीरा है,
मुझे भ्रम होता है कि प्रत्येक वाणी में
महाकाव्य-पीड़ा है,
पल भर में सब में से गुजरना चाहता हूँ,
प्रत्येक उर में से तिर आना चाहता हूँ,
इस तरह खुद ही को दिये-दिये फिरता हूँ,
अजीब है जिन्दगी !!"

(३) **सामाजिक विरूपता एवं धार्मिक अंध-विश्वासों पर तीखा व्यंग**–प्रयोगवादी कवियों ने आज की सामाजिक विरूपता एवं धार्मिक अंधविश्वासों, मान्यताओं एवं रूढ़ियों पर तीखा व्यंग किया है। देखिए आज के जन-नेताओं पर एक तीखा व्यंग वैद्यनाथ मिश्र 'नागार्जुन' के काव्य की पंक्तियों में :

"हमें सीख दो शान्ति और संयम जीवन की
अपनी खातिर करो जुगाड़ अपरिमित धन की
बेच बेच कर गाँधी जी का नाम
बटोरो वोट
हिलाओ शीश
निपोरो खीस
बैंक-बैलेंस बढ़ाओ।"

देखिए आज के धार्मिकों एवं धार्मिक मान्यताओं पर तीखा व्यंग नागार्जुन की 'देखना ओ गंगा मइया' कविता की कुछ पंक्तियों में :

"चंद पैसे
दो-एक दुअन्नी-एकन्नी
कानपुर-बम्बई की अपनी कमाई में से
डाल गये हैं श्रद्धालु गंगा मइया के नाम
पुल पर से गुज़र चुकी है ट्रेन
नीचे प्रवाहमान उछली-छिछली धार में
फुर्ती से खोज रहे पैसे
मल्लाहों के नंग-धड़ंग छोकरे
दो दो पैर
हाथ दो दो
प्रवाह में खिसकती रेत की ले रहे टोह
बहुधा अवतरित चतुर्भुज नारायण आ
खोज रहे पानी में जाने कौस्तुभ-मणि
बीड़ी पियेंगे
आम चूसेंगे
या कि मलेंगे देह में साबुन को सुगन्धित टिकिया
लगायेंगे सर में चमेली का तेल।"

४. गर्हित साम्प्रदायिकता के प्रति तीखा स्वर—प्रयोगवादी कवि ने साम्प्रदायिकता को गर्हित मानकर उस पर तीखे व्यंग किये हैं। देखिये शमशेर बहादुर सिंह की कुछ काव्य-पंक्तियाँ :

"ईश्वर !
अगर मैंने अरबी में प्रार्थना की, तू मुझसे नाराज़ हो जायेगा ?
अल्लाह !
यदि मैंने संस्कृत में संध्या कर ली, तो तू मुझे दोज़ख़ में डालेगा ?
लोग तो यही कहते घूम रहे हैं।
तू बता ईश्वर
तू ही समझा मेरे अल्लाह।"

५. दूषित वृत्तियों का नग्न चित्रण—नई कविता में रूपासक्ति, माँसल प्रेम और वासना की मुखरता है।

अतृप्तदमित वासनायें एवं कुण्ठाएँ जिनको समाज एवं साहित्य आज तक अश्लील, अस्वस्थ एवं असामाजिक मानता रहा 'नई कविता' में उनको खुलकर उभारा गया है।

देखिए धर्मवीर भारती के काव्य की पंक्तियों में रूपासक्ति :

"मुझे तो वासना का विष बना गया अमृत।
बशर्ते वासना भी हो तुम्हारे रूप से आबाद।"

इसी सन्दर्भ में देखिए अनन्तकुमार 'पाषाण' की दो काव्य-पंक्तियाँ :

"पास घर आये तो
दिन भर का थका जिया मचल-मचल जाये।"

६. **लघु-मानव की प्रतिष्ठा एवं मध्यम-वर्ग का प्रतिनिधित्त्व**—विज्ञान-युग ने मानव को लघुत्त्व की निम्नतम श्रेणी तक उतार कर उसके अस्तित्त्व को नगण्य बना दिया, किन्तु, 'नई कविता' ने लघु-मानव को विराटत्त्व प्रदान किया, उसने वैज्ञानिक-युग के समर्थकों को यह समझने को बाध्य किया कि मानव भले ही मशीन न हो, मशीन का एक छोटा पुर्जा हो, पर जैसे मशीन के छोटे से छोटे पुर्ज़े के बिगड़ जाने से बड़ी से बड़ी मशीन निरर्थक हो जाती है, उसी प्रकार व्यक्ति के अस्तित्त्वहीन होने से समाज भी अस्तित्त्वहीन हो जाता है। साथ ही, जिस प्रकार प्रगतिवाद ने 'सर्वहारा वर्ग' की वकालत की उसी प्रकार प्रयोगवादी नई कविता ने दो पाटों के बीच दबे मध्यम-वर्ग की आवाज़ को बुलन्द किया।

७. **समसामयिकता**—नई कविता में समसामयिकता की अभिव्यक्ति है। नया कवि न तो भूत के प्रति आसक्त है और न भविष्य के प्रति आस्थावान। वह तो वर्तमान में ही तृप्ति का विश्वासी है। देखिए उसके विश्वास की कुछ पंक्तियाँ :

"क्या अनागत का हिमालय
बुझा पायेगा तेरी प्यास ?
सिन्धु खारा विगत का लहरा रहा
क्या तृप्ति देगा ?
जीव प्यासे
आँख अपनी खोल देखो जान्हवी को सामने ही तो तुम्हारे बह रही है।"

८. **यथार्थबोध की तीव्रता एवं युग के खोखलेपन पर व्यंग**—नई कविता में एक ओर कवि में समसामयिकता है, वह वर्तमान के प्रति आशावान है, पर दूसरी ओर 'नई कविता' में युग के खोखलेपन पर चुभती हुई अभिव्यक्तियाँ भी हैं।

देखिये भारतभूषण अग्रवाल की काव्य-पंक्तियों में नये युग के खोखलेपन का एक सुन्दर चित्र :

"गाय बोली बैल से, क्यों छेड़ते हो भाई
जानते हो सब कहते हैं मुझे माई
बैल बोला धत्त रे
मारूँगा दुलत्त रे
मैं भी हूँ चौपाया और तू भी है चौपाई।"

९. **अनावृत अभिव्यक्ति एवं स्वर की निर्भीकता**—नये कवि का स्वर आवरणरहित है, उसमें निर्भीकता है, पर उसकी अनुभूति रागात्मक न होकर बौद्धिक है। आज का कवि लगी-लिपटी बात नहीं करता, वह कबीर की तरह मुँहफट्ट है। उसे न समाज का डर है, न पंडित या मुल्ला का और न शासनाधीशों का। देखिए सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के काव्य से कुछ पंक्तियाँ :

मैं कहना चाहता हूँ—
यह कायरों का देश है
यहाँ लोग देखने को आगे देखते हैं
चलने को पीछे चलते हैं
घुनी लकड़ियों के धनुष बनाते हैं
और विवेक के नाम पर
प्रत्यंचा चढ़ाने से मना कर देते हैं।"

१०. बौद्धिक शुष्कता—'नई कविता' में भाव-तत्त्व की अपेक्षा बुद्धि-तत्त्व की प्रबलता है, फलतः उसमें रागात्मकता के स्थान पर विचारात्मकता की अधिकता है, कारणस्वरूप वह सरस के स्थान पर नीरस एवं सुबोध के स्थान पर दुर्बोध बन गई है। किन्तु, 'नई कविता' के कवि इसे अपने काव्य का अनन्य गुण मानते हैं। वे इस दुरूहता को 'बुद्धिरस' की संज्ञा देते हैं। इस सन्दर्भ में 'अज्ञेय' की मान्यता है कि 'नयी कविता का कवि वह कहता है जिसे वह महत्त्वपूर्ण समझता है, और वह उनके लिए कहता है, जो उसे समझ सकें।'

११. नूतनता का सर्वग्राही मोह—नई कविता के कवि में नूतनता के प्रति सर्वग्राही मोह है, वह कविता के समग्र क्षेत्र—भाव, भाषा विषय, शैली, कल्पना, प्रतीक, अनुभूति, और रस—सभी में असीम नूतनता लाना और प्रदर्शित करना चाहता है। नूतनता के असीमित मोह से उसकी कविता एक ओर तो कृत्रिम बन गई है, दूसरी ओर उसमें दुरूहता, प्रभाव की क्षणिकता एवं भौंडापन आ गया है। फलतः वह कविता तो दूर कविता जैसी भी नहीं लगती। ऐसा लगता है जैसे किसी स्त्री ने पुरुष की पोषाक पहन ली हो, या फिर वह किसी नौटंकी का विदूषक हो।

१२. क्षणिकता— नई कविता में स्थायी समस्याओं एवं अनुभूतियों की अपेक्षा तात्कालिक समस्याओं एवं क्षणिक अनुभूतियों को अधिक महत्त्व प्रदान किया गया है।

कला-पक्ष की प्रवृत्तियाँ—नई कविता का लक्ष्य भाव-क्षेत्र में जिस प्रकार उन विषयों का अन्वेषण करना है जिन्हें अभेद्य मान लिया गया है अथवा अभी तक छुआ नहीं गया है, उसी प्रकार कला-क्षेत्र में अभिव्यक्ति के नवीन से नवीन माध्यमों का आविष्कार करना है।

अभिव्यक्ति के नवीन माध्यम नई कविता में मुख्यतः चार रूपों में देखने को मिलते हैं :

१. गद्यात्मकता।
२. देशी-विदशी प्रचलित-अप्रचलित सभी प्रकार के शब्दों का प्रयोग।
३. नये बिम्ब और नये प्रतीक।
४. अटपटे एवं भदेस प्रयोग।

गद्यात्मकता—कविता के लिए सामान्यतः पद्यात्मकता का विधान है, पर, कविता पद्य में ही हो सकती है, अथवा गद्य में हो ही नहीं सकती ऐसा कोई साहित्य-शास्त्रीय विधान नहीं है। साहित्य-दर्पणकार ने भी 'वाक्यं रसात्मक काव्यं' काव्य की परिभाषा दी है, इसमें गद्य-पद्य का कोई भेद नहीं किया है। इसी कारण बाण-भट्ट की 'कादम्बरी' जो एक गद्य-रचना है, काव्य मानी जाती है, तथापि पद्य की श्रवणेन्द्रिय से सन्निकटता के कारण उसमें श्रोता के ध्यानाकर्षण की शक्ति अधिक होती है, यह यथार्थ सत्य है। इसी कारण अधिकांश काव्य-साहित्य पद्यबद्ध ही है।

किन्तु, आधुनिक युग में स्थिति में परिवर्तन हुआ है। आज कविता श्रव्य की अपेक्षा पाठ्य और मुद्रित अधिक होने लगी है। अतः उसमें भावाद्रेक के साथ मानसिक जटिलताओं की सृष्टि भी होने लगी है। यही कारण है कि कविता पद्यात्मक के साथ-साथ गद्यात्मक भी होने लगी। 'नई-कविता' में क्योंकि 'भाव-तत्त्व एवं 'कल्पना-तत्त्व' की अपेक्षा 'बुद्धितत्त्व' की प्रबलता है, अतः नई कविता में गद्यात्मकता अधिक है।

नई कविता में गद्यात्मक कविवर निराला की देन है, जिनकी कविता में यह परिवर्तन क्रमशः हुआ है—'जुही की कली' तथा 'संध्या सुन्दरी' में छन्द का बन्धन टूटा है, 'कुकुरमुत्ता' में लय-बन्धन शिथिल हुआ है तथा 'कुत्ता भौंकने लगा' में तो पद्यात्मकता का कोई भी लक्षण दृष्टिगत नहीं होता।

अतः नई कविता में गद्यात्मकता नई कविता की विशिष्टता न होकर आधुनिक युग की विशेषता है, जिसने 'नई कविता' को युगानुकूलता की विशिष्ट शक्ति प्रदान की है।

शब्द-चयन—नई कविता के कवि ने अपनी कविता के लिए, विभिन्न स्थानों से विषयानुकूल शब्दों का 'मुक्त-चयन' किया है। इसमे संस्कृत के तत्सम शब्द, विभिन्न बोलियों के 'बोलचाल के' शब्द, अँग्रेज़ी, उर्दू आदि विभिन्न भाषाओं के देशी-विदेशी शब्द हैं, तथा कुछ शब्दों की आवश्यकतानुकूल नई रचना की गई, यथा—

संस्कृत के तत्सम शब्द—कोण, स्रोतस्विनी, प्लवन, क्रोड, मृदु, प्रखर, मनस्वी, मनीषा, विगलित, अनावरण, आततायी, आवेष्टित आदि।

तद्भव शब्द—सिल (शिला), पितर (पितृ), गहरे (गम्भीर), पसार (प्रसार) फेन, (स्फेन) आदि।

उर्दू-फारसी के शब्द—बल्कि, महक, मुसकाते, हुजूर, किसिम (किस्म) ज़रूरत, आखिर, महसूस, अक्सर, अक्ल, तजुर्बा आदि

अंग्रेजी भाषा के शब्द—फ़्यूज़, स्कूल, ट्रेन, थियेटर, पोस्टर, आफिस, कन्फ्यूज्ड, पिकनिक आदि।

बोलचाल के देशज शब्द—कुण्डी, पोखर, बस्ती, हुलास आदि।

ध्वन्यात्मक शब्द—धड़धड़ाती, लहराती, झलमलाती।

गढ़े हुए शब्द—ललाती, शब्दित, शिथिलित, शहराती, सर्पीला, किरनीली, अँकुराती, उत्सवित आदि।

इस प्रकार 'नई कविता' के शब्द-चयन ने कहीं उसे शक्तिमत्ता और यथार्थता प्रदान कर आकर्षक बनाया है, तो कहीं दुरूह भी।

नये बिम्ब और नये प्रतीक—नये कवियों ने अपनी नई कविता के नये विषयों एवं नई अभिव्यक्ति के लिए पुराने प्रतीकों एवं पुराने उपमानों को अशक्त मानकर सर्वथा नवीन उपमानों का प्रयोग किया है, जिसके उदाहरण दृष्टव्य हैं :

"गुफा में फैलते सीरे सा !
पसरा था अन्धकार

—अज्ञेय
('न जाने केहि भेस' कविता से)

"बूँद टपकी एक नभ से
किसी ने झुककर झरोखे से
कि जैसे हँस दिया हो"

—भवानीप्रसाद
('बूँद टपकी एक नभ से' कविता से)

**"अब गिरा, अब गिरा वह अटका हुआ आँसू
सांन्ध्य तारंक सा"**

**—शमशेर
('एक पीली शाम' कविता से)**

**"सूखी काली छाल-सा झटक देते
भीतर की सीलन घुटन"**

**—गिरिजाकुमार माथुर
('पतझर की एक दुपहर' कविता से)**

**"स्थिर अवसाद की परतों बीच
जलते स्वप्न सा
टिमटिमाता दीप !"**

**—विजयदेव नारायण साही
('रात में गाँव' कविता से)**

इस प्रकार 'नई कविता' के कवियों ने अपनी-अपनी अभिव्यक्ति को मूर्तिमान, सुन्दर तथा सशक्त बनाने के लिए सर्वथा नवीन उपमानों एवं प्रतीकों का चयन किया है :

कहीं स्थूल के लिए सूक्ष्म, तो कहीं सूक्ष्म के लिए स्थूल, और अपने इस प्रयास में वह सर्वथा सफल हैं।

किन्तु, नई कविता को नये उपादान प्रदान करने की होड़ में कहीं इस धारा में नवागन्तुक कवि शील की सीमा को लाँघ गये हैं और कहीं उपादान न केवल निरर्थक अपितु, हास्यापद हो गये हैं, जिससे कविता की प्रभावोत्पादकता नष्ट हो गई है। देखिए दो-एक उदाहरण :

**"मेरे मन की अँधियारी कोठरी में
अतृप्त आकाँक्षा की वेश्या बुरी तरह खाँस रही है!"**

—अनन्तकुमार 'पाषाण'

**"मेरे सपने इस तरह टूट गये,
जैसे भुना हुआ पापड़।"**

—अज्ञात

इस प्रकार स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता/नई कविता का विस्तृत सिंहावलोकन करने के पश्चात् उसकी न्यूनताओं एवं उपलब्धियों पर भी संक्षिप्त दृष्टिपात आवश्यक है। नई कविता की न्यूनताओं को दृष्टिगत कराने के लिए हम हिन्दी समालोचना-जगत की तीन प्रतिष्ठित विभूतियों डा. नगेन्द्र, आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी एवं डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त के 'नई कविता' के सम्बन्ध में कुछ आक्षेपों को नीचे प्रस्तुत कर रहे हैं :

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता/नई कविता के अभाव एवं न्यूनतायें

१. "जहाँ पूर्ववर्ती कवि बौद्धिकता की अभिव्यक्ति रागात्मकता के माध्यम से करते थे, वहाँ इन्होंने (नई कविता के कवियों ने) रागात्मक तत्त्व के लिए बौद्धिकता को अपनाकर क्रम-विपर्यय का उदाहरण प्रस्तुत कर दिया है। दूसरे, इसमें भाषा का सर्वथा वैयक्तिक प्रयोग किया गया है, प्रयोगवादी कवि शब्दों को प्रचलित अर्थ में ग्रहण करना उचित नहीं समझते। वे शब्द के साधारण अर्थ में बड़ा अर्थ भरना चाहते हैं और इसी प्रयास में साधारण अर्थ को भी खो बैठते हैं।

**—डॉ. नगेन्द्र
('प्रयोगवाद या नई कविता' शीर्षक डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त के निबन्ध से)**

२. **आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी के आक्षेप**—

(क) अनेक रचनायें क्षणिक विनोद अथवा सीधे व्यंग्य की सृष्टि के आगे नहीं जा पातीं।

(ख) आगे बढ़ने पर ऐसी रचनाओं से साबका पड़ता है जिनमें अर्थ-परम्परा टूट-टूट जाती है और पूरी रचना पढ़ लेने पर भी किसी भावान्विति का बोध नहीं होता।

(ग) भाव-धारा की विरलता है—इनमें भावना अंतर्मन की उसाँस भर है।

(घ) इन रचनाओं में सामाजिक और व्यावहारिक तथ्यों का नितान्त अभाव है।

(ङ) इनमें सामाजिक और राजनीतिक उत्तरदायित्त्व के प्रति विद्रोह तथा नैतिक, सैद्धांतिक एवं चारित्रिक उच्शृंखलता की छूट माँगी जाती है।

(च) इनमें जीवन के प्रति किसी रचनात्मक दृष्टि, कर्मण्यता और क्रियाशीलता का अभाव है।

३. **डा. गणपतिचन्द्र गुप्त के विचार**—

"हम 'नई कविता' का स्वागत करने के लिए तैयार हैं—यदि वह सचमुच कविता हो। अनुभूतियाँ चाहे कैसी ही हों, हमें इससे कोई एतराज़ नहीं, किन्तु, वे हों तो सही। केवल बौद्धिक कल्पना बताना अपनी आँखों को धोखा देना है। शब्दावली भी सर्वथा तत्सम ही हो, इसका आग्रह हम नहीं करते, नीचे से नीचे स्तर के शब्दों का प्रयोग किया जा सकता है, किन्तु उनमें अर्थ देने की क्षमता का तो होना आवश्यक है। किन्तु, पाठकों के दिमाग़ को अपनी कविता के लिए अनफिट घोषित करके अपने अहं की डुग-डुगी को बजाते-चलना वैसा ही है जैसा कि चीनी के स्थान पर नमक का बोरा लेकर बैठ जाना और फिर प्रत्येक ग्राहक को यह कहना कि तुम्हारी जिह्वा का स्वाद बिगड़ गया है, अतः किसी नई जिह्वा से इसे चखो।"

('प्रयोगवाद या नई कविता' निबन्ध से)

उपसंहार (उपलब्धियाँ)

स्वतंत्रता के पश्चात् स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य/प्रयोगवाद/नई-कविता के समारम्भ को अभी अधिक समय नहीं हुआ है किन्तु उसके विरुद्ध तीव्र प्रतिक्रियाएँ एवं आलोचनाएँ होने लगी है, जो यों ही नही हैं, उनमें पर्याप्त मात्रा में सार का अंश है, पर, प्रश्न है कि इसका कारण क्या है और समाधान क्या है ?

कारण हैं—(१) मार्गदर्शन का अभाव, (२) आज के कवियों का कविता के आदर्श एवं लक्ष्य से भटकाव (३) फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद तथा विज्ञान का काव्य के क्षेत्र में प्रवेश एवं (४) सस्ती लोकप्रियता।

आज न भारतेन्दु हैं, न द्विवेदी, न मैथिलीशरण गुप्त, प्रसाद, पंत या निराला जो आज के कवि का मार्ग-दर्शन कर उसे भटकाव से रोक दिशा-बोध दे सकें। परिणामस्वरूप इस गहन अंधकार में जहाँ जिसे कोई छोटी-सी भी गली दिखाई दी वह बिना यह सोचे समझे कि यह पथ अथवा राजपथ है कि नहीं उसी ओर अर्रा पड़ा और बाद को उसे जो-जो मिलता गया उसे नाक कटे नकटे की भाँति ईश्वर का दर्शन कराता गया, अंततः उन नाक-कटे नकटों का एक गिरोह बन गया, यद्यपि आज वे अनभिज्ञ नहीं हैं यथार्थ से, अवगत हो चुके हैं, पर दूसरों के सामने इस कटु यथार्थ को स्वीकार कैसे करें ? नाक-कटे नकटे हैं न !

यह स्थिति है फ्रायड के मार्गदर्शन में चलने वाले आज के कवि ओर उनके प्रशंसकों की। आज का भटका कवि यह भूल बैठा है कि 'काव्य का सत्य' विज्ञान का सत्य' नहीं है जो मानव-शरीर के समान 'काव्य' के चिथड़े-चिथड़े उड़ाकर उसे विद्रूप और वीभत्स बना दे। 'काव्य का सत्य' बिखरे अंगों को जोड़कर उन्हें वस्त्रोंभूषणों से सज्जित कर स्वस्थ और सुन्दर रूप देने में विश्वास रखता है, और रखता है आस्था, 'सत्य' के शिवत्त्व में क्योंकि साहित्य के सत्य के साथ शिवत्त्व और सुन्दरत्त्व के तत्त्व जुड़े हुए हैं। पर, आज का कवि साहित्य के सत्य के स्थान पर विज्ञान के सत्य को स्वीकार किए बैठा है और उसमें भी उसकी मुथरी दृष्टि विज्ञान के निर्माणात्मक सत्य तक नहीं जा पाती, विध्वंसात्मक सत्य तक ही जाकर रुक जाती है, परिणामस्वरूप आज के भटके कवि को सस्ती लोकप्रियता प्राप्त करने के चाव में सावन के अंधो के समान सब हरा ही हरा दीखता है।

तथापि 'नई कविता' के सब अभाव ही अभाव हों, ऐसा नहीं है, उसकी उपलब्धियाँ भी हैं–

आज की कविता ने लघुता को प्राप्त हुए मानव को विराट्त्त्व प्रदान किया है। मानव ही क्या उसने तो मकड़ी की टाँग तक को अपने काव्य में स्थान दिया है। उसने लघु एवं नगण्य तथा कुरूप से कुरूप में भी सौन्दर्य देखा है। उसने दो पाटों के बीच पिस रहे समाज के मध्यम-वर्ग तथा उसके जीवन की समस्याओं को उभारा है। उसने कल्पना-लोक के आदर्श को यथार्थ के धरातल पर लाकर खड़ा कर दिया है। उसने रौद्र और वीभत्स रसों को स्थान देकर छायावाद के बड़े अभाव की पूर्ति की है एवं भाषा में सभी प्रकार के शब्दों को सम्मिलित कर उसने भाषा को सशक्तता प्रदान की है। उसके उपमान सजीव और सुन्दर हैं।

कुल मिलाकर स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य की उपलब्धियाँ कम नहीं है। आवश्यकता उसे केवल डा. नगेन्द्र, आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी तथा डा. गणपति चन्द्र गुप्त जैसे प्रबुद्ध समालोचकों की, जो उसे भटकाव से रोक सकें, दिशा-बोध दे सकें।

—आचार्य कान्तिस्वरूप वैश्य

नई कविता के रचनाकार

(व्यक्तित्त्व एवं कृतित्त्व)

१. सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय'
(७ मार्च, १६११–४ अप्रैल, १६८७)

जीवन-परिचय

सच्चिदानन्द वात्स्यायन जी प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेता पं. हीरानन्द शास्त्री के सुयोग्य सुपुत्र थे। अपने पिता के नाम पर ही इनका नाम सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन पड़ा। 'अज्ञेय' इनका उपनाम था।

अज्ञेय जी का जन्म ७ मार्च १६११ को उत्तर-प्रदेश राज्य के देवरिया जनपद के 'कसिया' नामक ग्राम में हुआ था। अज्ञेय जी के पिता शास्त्री जी पुरातत्त्ववेत्ता होने के कारण एक स्थान पर स्थिर न रह सके, अपने ग्राम को छोड़कर कभी लखनऊ, कभी मद्रास, कभी कश्मीर, कभी बिहार और कभी लाहौर, उन्हें विभिन्न स्थानों पर भटकना पड़ा। इसी कारण 'अज्ञेय' जी की शिक्षा-दीक्षा किसी एक स्थान पर रहकर न हो सकी। यदि प्रारंभिक शिक्षा लखनऊ में हुई तो हाई स्कूल परीक्षा पंजाब से दी और बी. एस. सी. की उपाधि लाहौर से प्राप्त की। संस्कृत एवं भारतीय कलाओं का ज्ञान आपको अपने पिताश्री के सान्निध्य से ही प्राप्त हुआ।

अज्ञेय जी बचपन से ही क्रान्तिकारी विचारधारा के व्यक्ति थे, जैसे-जैसे अवस्था बढ़ती गई विचारधारा में तीव्रता आती गई, क्रान्तिकारी आन्दोलनों में सक्रिय भाग लेने लगे। अँग्रेजी सरकार इन पर तीव्र दृष्टि रखने लगी। अंततः नवम्बर सन् १६३० में पकड़े गये, शिक्षा बीच में ही छूट गई और ४ वर्ष के कारावास तथा २ वर्ष की नज़रबन्दी का काल लाहौर, दिल्ली एवं पंजाब में काटना पड़ा।

'अज्ञेय' जी देशभक्त क्रान्तिकारी के साथ-साथ एक प्रख्यात प्रगतिवादी एवं प्रयोगवादी साहित्य-सर्जक भी थे। आपके जीवन में ये धाराएँ समानान्तर रूप से जीवन के अन्त तक चलती रहीं। ४ अप्रैल १६८७ को आपका स्वर्गवास हो गया।

व्यक्तित्व

अज्ञेय जी का व्यक्तित्व बहु-आयामी था। उनकी प्रकृति एक यायावर की थी, जिसने उन्हें यूरोप, जापान, पूर्व-एशिया एवं संयुक्त राष्ट्र-अमेरिका तक की यात्राएँ कराई।

वह एक राष्ट्र-भक्त क्रान्तिकारी थे, जिसके कारण उन्हें स्नातकोत्तर परीक्षा से पूर्व, स्नातक की कक्षा के पश्चात् अपनी शिक्षा बीच में ही छोड़नी पड़ी एवं दो वर्ष की नज़रबन्दी तथा चार वर्ष के कारावास का दण्ड भोगना पड़ा।

अज्ञेय जी एक कुशल-प्रशासक एवं कुशल-प्रबंधकर्ता थे। उन्होंने जोधपुर विश्वविद्यालय के 'तुलनात्मक साहित्य तथा भाषा-अनुशीलन-विभाग' के अध्यक्ष-पद का उत्तरदायित्व वहन किया एवं आकाशवाणी में भी कुशल प्रबंधकर्ता रहे।

साहित्य के क्षेत्र में अज्ञेय जी हिन्दी-साहित्य में बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न नवोन्मेषी, सारगर्भित साहित्य-सृष्टा थे। अज्ञेय जी एक स्तरवान कवि, कथाकार, उपन्यासकार, निबंधकार, समीक्षाकार, यात्रावृत्तकार, अनुवादक, संपादक, संकलनकर्ता सभी कुछ थे तथा 'नई कविता' के तो आधार-स्तम्भ ही थे। सन् १६७६ में उन्हें अपनी साहित्य-सेवाओं के लिए 'भारतीय ज्ञानपीठ-पुरस्कार' से सम्मानित किया गया था।

कृतित्त्व

हिन्दी-साहित्य (स्वातंत्र्योतर) के क्षेत्र में जैसा कि हम पूर्व ही कह चुके हैं, अज्ञेय जी बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न साहित्यकार थे, हिन्दी-साहित्य की विविध विधाओं काव्य, उपन्यास, कहानी, निबंध, समालोचना आदि लगभग सभी का उनकी दृष्टि एवं लेखनी ने संस्पर्श किया है, किन्तु यहाँ क्योंकि हमारा विचार-विषय 'स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य' मात्र ही है, अतः अज्ञेय जी के काव्य की समीक्षा में भी हम अपने को वहीं तक सीमित रखेंगे।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी-काव्य-धारा 'नई कविता' और अज्ञेय

भाव-पक्ष

स्वतंत्रता के पश्चात् का हिन्दी कविता का काल लगभग १६५०-५१ से आरंभ होकर अद्यतन गतिमान है। इस बीच हिन्दी-कविता तीन धाराओं में होकर प्रवाहित हुई–

१. प्रगतिवादी काव्य-धारा, २. प्रयोगवादी काव्य-धारा तथा ३. नई कविता। अज्ञेय जी की कविता इन तीनों कालों के मध्य होकर गुज़री है, अतः उन तीनों के स्वर उनकी कविता में स्पष्ट सुने जा सकते हैं, पर अंततः उनकी पूर्णाहुति 'नई कविता' में ही मिलेगी।

अज्ञेय जी नई कविता के प्रस्तोता थे। नई कविता की निम्नलिखित विशेषताएँ अज्ञेय जी के काव्य में स्पष्ट परिलक्षित हैं–

घोर यथार्थ का आग्रह–नई कविता में नग्न-यथार्थ का चित्रण है। 'वासना' जो मानवीय दुर्बलता है, नई कविता का कवि समाज के मध्य उसे उसी नग्न रूप में प्रस्तुत करने में झिझकता नहीं, बल्कि उसमें अश्लीलता नहीं देखता। नई कविता की यह प्रवृत्ति अज्ञेय जी की कविता में स्पष्ट परिलक्षित है। देखिए निम्नलिखित पंक्तियों में–

अहो ! मेरा श्वास है उत्तप्त,
धमनियों में उमड़ आई है लहू की धार
प्यार है अभिशप्त
तुम कहाँ हो नारि।

व्यवधान-रहित संयोग

अज्ञेय के काव्य में प्रणय की सशक्त अभिव्यक्ति है। उनके काव्य में संयोग, वियोग दोनों के स्वर-मुखर हैं। संयोग के एक क्षण के सामाजिक व्यवधान रहित सुख पर वह कल्पों के सव्यवधान-सुख को निछावर करने को तत्पर नज़र आते हैं। अज्ञेय जी प्रणय-संयोग के मध्य किसी प्रकार का व्यवधान नहीं चाहते। प्रणय-संयोग के मध्य उन्हें सभ्य-शिष्ट-जीवन की दरारों की मध्यस्थता स्वीकार्य नहीं। उनकी कविता का यह रूप उन्हें रोमांटिक कवियों की कतार में खड़ा कर देता है।

देखिए, 'हरी घास पर क्षण भर' कविता की कुछ पंक्तियाँ—

"आओ क्षण भर हरी घास पर बैठें—
आओ बैठो,
तनिक और सटकर कि हमारे बीच
स्नेह भर का व्यवधान रहे बस
नहीं दरारें सभ्य शिष्ट जीवन की।"

व्यक्ति-अस्तित्त्व की मुखरता—नई कविता का कवि अपने अस्तित्त्व के प्रति मुखर है, वह अपने अस्तित्त्व को सामाजिकता में विलुप्त करने को कदापि तत्पर नहीं है। अज्ञेय के काव्य में व्यक्ति-अस्तित्त्व की यह मुखरता स्पष्टतः दृष्टिगत है।

देखिए, 'नदी के द्वीप' कविता की निम्नलिखित पंक्तियों में—

किन्तु, हम हैं द्वीप
हम बहते नहीं हैं, क्योंकि बहना रेत होना है।
हम बहेंगे तो रहेंगे ही नहीं।
पैर उखड़ेंगे। प्लवन होगा। ढहेंगे। सहेंगे। बह जायेंगे।

समरस व्यक्तित्व—अज्ञेय की कविता में व्यक्ति-अस्तित्त्व की मुखरता होते हुए भी सामाजिक समरसता का स्वर है। अज्ञेय नये व्यक्तित्व के नाम पर स्वैराचार एवं अतिचार के हामी नहीं हैं।

देखिए, 'नदी के द्वीप' कविता की ही निम्नलिखित पंक्तियों में—

नदी, तुम बहती चलो
भूखण्ड से जो हमको मिला है, मिलता रहा है,
माँजती, संस्कार देती चलो
यदि ऐसा कभी हो
तुम्हारे आल्हाद से या दूसरों के स्वैराचार से—
अतिचार से—
तुम बढ़ो, प्लावन तुम्हारा घरघराता उठे—
यह स्त्रोतस्विनी ही कर्मनाशा कीर्तिनाशा घोर
काल-प्रवाहिनी बन जाय।
तो हमें स्वीकार है वह भी। उसी में रेत होकर फिर छनेंगे हम।
जमेंगे हम। कहीं फिर पैर टेकेंगे।
कहीं फिर भी खड़ा होगा नये व्यक्तित्व का आकार।
मातः, उसे फिर संस्कार तुम देना।

सत्यान्वेषण एवं नई खोज की प्रवृत्ति, मध्यम-वर्ग का प्रतिनिधित्व—नई कविता युग-युगों की पूर्व संस्कृति के ध्वंस की उद्घोषिका एवं सत्यान्वेषित यथार्थ की नींव पर खड़ी नये युग की नई संस्कृति की पोषिका है, जिसने मध्यम-वर्ग का प्रतिनिधित्त्व किया है एवं आध्यात्मिक तथा भावात्मक सत्य के स्थान पर बौद्धिक सत्य को महत्त्व दिया है। देखिये अज्ञेय की कविता में इसकी तीखी व्यंजना—

हम सबके मन में उतर गया है युग
अँधियारा है, अश्वत्थामा है, संजय है।
है दास-वृत्ति उन दोनों वृद्ध प्रहरियों की
अंधा संशय है, लज्जाजनक पराजय है।

उपेक्षित विषयों पर दृष्टिपात—क्षुद्र समझे जाने वाले उपेक्षित विषयों पर दृष्टिपात की 'नई कविता की प्रवृत्ति' को भी अपनी नई-कविता में स्थान देने से अज्ञेय चूके नहीं है। देखिये **'शिशिर की राका निशा'** कविता की निम्नलिखित पंक्तियों में पशुओं में निकृष्ट समझे जाने वाले गदहे का एक चित्र—

निकटतर धँसती हुई छत, आड़ में निर्वेद
मूत्र-सिञ्चित मृत्तिका के वृत्त में
तीन टाँगों पर खड़ा नत-ग्रीव
धैर्य-धन गदहा।

अज्ञेय की कविता में सामाजिक दायित्त्व—अज्ञेय सामञ्जस्य के कवि थे, अत्याचार स्वैराचार, अनाचार, व्यभिचार किसी भी दिशा में हो इसके वह घोर विरोधी थे, इसी कारण सामाजिक दायित्त्व के प्रति पलायनवादी प्रवृत्ति एवं निराशावाद के स्थान पर उनके काव्य में ललकार है, और है कागजी सजगता के स्थान पर सामाजिक वैषम्य-निवारण के लिए क्रान्ति का शंखनाद। देखिए, अज्ञेय के काव्य से इस सन्दर्भ में कुछ पंक्तियाँ—

हमने न्याय नहीं पाया है
हम ज्वाला से न्याय करेंगे।
धर्म हमारा नष्ट हो गया।
अग्नि-धर्म हम हृदय धरेंगे।

देश और समाज की समकालीन समस्याएँ भी अज्ञेय की दृष्टि से चूकी नहीं हैं, इन पर तीखा एवं मार्मिक व्यंग उनके काव्य में स्पष्ट दृष्टिगत है, देखिए कुछ पंक्तियाँ—

देश रे देश, तेरे सिर पर कोल्हू
इसका भार तू कैसे ढोयेगा।
जिसे पेरेंगे जाट, बाम्हन, बनिये, तेली, खत्री
मौलवी, कायस्थ, मसीही, जाटव, सरदार, भूमिहार, अहीर
और वे सारे, घेरे के बाहर के बेचारे
जो नहीं पहचानते अपनी तकदीर
तू किस-किस को रोयेगा ?
कब बनेगा तू राष्ट्र ?

नई-कविता का कला-पक्ष अज्ञेय के काव्य में (प्रतीक-प्रधानता एवं नये प्रतीक)—नई-कविता अभिधा में नहीं बोलती, प्रतीकों में बोलती है क्योंकि उसके विषय सर्वथा नवीन हैं, जिनका रूपांकार रूप और आकार रहित है, वे व्यञ्जनीय हैं। अभिधा उन विषयों में छिपे भावों की अभिव्यक्ति में सर्वथा असमर्थ है, उनमें छिपी व्यञ्जना एवं लाक्षणिकता प्रतीक-व्यक्त ही है।

अज्ञेय की कविता सर्वत्र प्रतीक-प्रधान है। उनके प्रतीक पारम्परिक प्रयोगों से भिन्न सर्वथा नवीन हैं। उनकी 'नदी के द्वीप' कविता में 'द्वीप' 'व्यक्ति-अस्तित्त्व' का बोधक है और 'नदी' 'समाज-धारा' का। अज्ञेय उस साम्यवाद अथवा समाजवाद के पोषक नहीं, जिसमें व्यक्ति अस्तित्त्वहीन है, पर साथ ही व्यक्ति-स्वातन्त्र्य के नाम पर स्वैराचार और अतिचार के समर्थक भी नहीं।

'कलगी बाजरे की' शीर्षक कविता में अज्ञेय अपनी प्रेयसी को पारम्परिक उपमान-प्रतीकों 'चाँद, कुमुदनी, कमलनी' आदि से संबोधित न कर 'हरी बिछली घास तथा छरहरी बाजरे की कलगी' प्रतीकों से संबोधित करते हैं जो पूर्णतः व्यञ्जनात्मक हैं एवं अपरम्परागत हैं। परम्परागत उपमानों एवं प्रतीकों के संबंध में अज्ञेय का कथन है—

ये उपमान मैले हो गये हैं।
देवता इन प्रतीकों से कर गये हैं कूच
बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है।

पुरातन एवं नूतन अलंकारों का प्रयोग—अज्ञेय ने पुरातन एवं नूतन दोनों प्रकार के अलंकारों को अपनी कविता में यथोचित स्थान दिया है। पुरातन अलंकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक एवं नूतन अलंकारों में मानवीकरण उनके प्रिय अलंकार हैं। अज्ञेय के अलंकार-प्रयोग में सजीवता एवं स्वाभाविकता है, वे मरमार के लिए नहीं भरे गये हैं। कतिपय, उदाहरण दृष्टव्य हैं—

शब्द गये बिखर फटी छीनी से जैसे—
फटकर हो जाते हैं बीज।

उपमा अलंकार

तुम्हारे नैन
पहले भोर की दो ओस बूँदे हैं।

व्यतिरेक अलंकार

छन्द और लयात्मकता—छन्द के क्षेत्र में नवीनता की दृष्टि से अज्ञेय का कविवर निराला के पश्चात् दूसरा स्थान है। उनके काव्य में लययुक्त मुक्त छन्द भी हैं और लयहीन गतिविहीन मुक्त छंद भी, तुकान्त छन्द भी और अतुकान्त छन्द भी।

भाषा—अज्ञेय की कविता जैसे-जैसे छायावाद से मुक्त होती गई है, यद्यपि उसमें जन-भाषा के शब्दों का प्रयोग बढ़ता गया है, पर, उसमें सरलता न आ पाई है, बौद्धिकता की प्रधानता एवं नये प्रतीकों के प्रयोग के कारण वह जटिल, दुर्बोध और सामान्य-मानस के लिए अग्राह्य होती गई है, जो नई कविता की प्रमुख प्रवृत्ति है, क्योंकि नई-कविता के प्रबुद्ध-कवियों की मान्यता है कि 'नई कविता' के लिए सामान्य-मानस की नहीं, सर्वथा नये मानस की आवश्यकता है।

इस प्रकार अज्ञेय की कविता अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचकर 'नई कविता' का सफल प्रतिनिधित्व करती है, उसमें 'नई कविता' की सभी विशिष्टतायें लक्षित हैं, पर तनिक शालीनता के साथ।

× × ×

२. गजानन माधव 'मुक्तिबोध'
(१३ नवम्बर, १६१७—११ सितम्बर, १६६४)

जीवन-परिचय

गजानन माधव मुक्तिबोध का जन्म १३ नवम्बर १६१७ को ग्वालियर रियासत के मुरैना ज़िले के शिवपुरी नामक स्थान पर हुआ था। आपके पिता माधवराव पुलिस-सब इन्स्पेक्टर थे। माता पार्वती बाई एक सुशिक्षित महिला थीं। गजानन अपने माता-पिता की तीसरी संतान थे। प्रथम दो संतानों की मृत्यु अल्प आयु में ही हो जाने से भयभीत माता-पिता ने गजानन को इनकी बुआ के पास इन्दौर भेज दिया, वहीं इनकी शिक्षा-दीक्षा हुई। १६३८ में बी. ए. परीक्षा उत्तीर्ण की। अर्थाभाव के कारण पढाई बीच में छोड़कर उज्जैन के मॉडर्न-स्कूल में अध्यापक हो गये, तत्पश्चात् १६५४ में एम. ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की और १६५८ में दिग्विजय कॉलेज में प्राध्यापक नियुक्त हुए। ११ सितम्बर १६६४ को पक्षाघात से आपकी मृत्यु हो गई। इस प्रकार बाल्यकाल के थोड़े से दिनों को छोड़कर आपका सारा जीवन अभावमय परिस्थितियों में बीता। दूसरी ओर आपका वैवाहिक जीवन भी सुखद न रहा, यद्यपि विवाह प्रेम-प्रसंग में हुआ था।

व्यक्तित्व

मुक्तिबोध बहुविध प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्तित्व के धनी थे। वह एक योग्य अध्यापक, सफल सम्पादक, स्तरवान समीक्षक तथा नई कविता के प्रतिनिधि कवि थे, पर उनका मुख्य व्यक्तित्व कवि का ही था।

कृतित्त्व

१६३५ से मुक्तिबोध काव्य-रचना के क्षेत्र में उतरे और उसके पश्चात् मृत्यु-पर्यन्त कवि-धर्म का निर्वाह करते रहे। काव्य-रचना के क्षेत्र में उनका कृतित्त्व हमें तीन माध्यमों से प्राप्त होता है—

१. १६४३ में प्रकाशित 'प्रथम तार-सप्तक' जिसमें मुक्तिबोध की १७ रचनायें संकलित हैं।

२. नया खून, आगामी कल, हंस, वसुधा, समता, प्रतीक, कल्पना, राष्ट्र-वाणी आदि पत्र-पत्रिकाएँ जिनमें उनकी कविताएँ प्रकाशित होती रहीं।

३. 'चाँद का मुँह टेढ़ा' कविता-संग्रह जो १६६४ में तब प्रकाशित हुआ जब वह मरणासन्न अवस्था में थे।

मुक्तिबोध अभावों और उपेक्षाओं में जिए। जीवन-भर उनसे संघर्ष करते रहे, पर हार नहीं मानी, जूझते ही रहे। उनके साहित्य में उनके जीवन की तस्वीर साफ दिखाई देती है।

मुक्तिबोध का काव्य

मध्यमवर्गीय श्रमशील शोषित मानवता का चित्रण

मुक्तिबोध मध्यम-वर्गीय समाज के प्रतिनिधि कवि थे। उसकी विपन्नताओं, विसंगतियों और विवशताओं का साकार चित्र और उभरता स्वर उनके काव्य में स्पष्ट देखा और सुना जा सकता है।

देखिए आज के अभिशप्त शोषित जन-जीवन का एक चित्र गर्भवती नारी में, जिसके पेट में संतान है, पर हुआ करे, घर-बाहर के काम में तो उसे जुटना ही है—

आँखों में तैरता है चित्र एक
उर में सँभाले दर्द
गर्भवती नारी का
कि जो पानी भरती है, वज़नदार घड़ों से,
कपड़ों को धोती है भाड़-भाड़
घर के काम, बाहर के काम, सब करती है
अपनी सारी थकान के बावजूद।

मुक्तिबोध की उक्त काव्य-पंक्तियों में प्रगतिवादी कवि का समाज-संपृक्त साम्यवादी स्वर है तथा श्रमशील मानवता का सजीव चित्र।

संघर्षरत मानव का एक अन्य चित्र प्रयोगवादी नई कविता के पोषक मुक्तिबोध की प्रगतिवादी शैली में देखिए, जो छायावादी काव्य से प्रयोगवादी नई-कविता की प्रथकता को व्यक्त करता है—

काठ के पैर
ठूँठ सा तन
गाँठ सा कठिन गोल चेहरा
लम्बी उदास लटकी डाल से हाथ क्षीण
वह हाथ फैल लम्बायमान
दूरस्थ हथेली पर अजीब
घोंसला पेड़ में एक
मानवी रूप
मानवी रूप में एक ठूंठ।

समाज-संसिक्ति

मुक्तिबोध प्रथम-सप्तक के साम्यवादी विचारधारा के प्रयोगशील कवि थे, जिनकी मान्यताएँ किसी विशिष्ट घोषणा-पत्र से बँधी न होकर अनुभव-आधारित हैं। इसी कारण मुक्तिबोध की काव्य-दृष्टि 'सर्वहारा-वर्ग' तक संकुचित न रहकर शोषण-ग्रस्त उस समग्र समाज पर पड़ी है, जिसमें चित्रकार, मूर्तिकार, कारखाने के मज़दूर, घर और बाहर के काम-काज का भार ढोती हारी-थकी गर्भवती स्त्रियाँ, भूख-प्यास से बिलखता बालक, किन-किन करता सद्योजात तथा लूट-पाट, आगज़नी और डकैतियों से भरी चम्बल-घाटियाँ आदि-आदि सभी हैं।

देखिए एक चित्र—

झरने के तट पर रोता है कोई बालक
अँधियारे में काले सियार से घूम रहे
मैदान सूँघते हुए हवाओं के झोंके
झरने के पथरीले तट पर
सो चुका अरे किन-किन करके कुछ रो-रो के
चिथड़ों में सद्योजात एक बालक सुन्दर..........

और—

हाँ, वहाँ एक गाँव दहक उठा
गरीबों का गाँव एक बिना ठाँव

ख़तरनाक लूट-पाट, आग, डकैतियाँ
चम्बल की घाटियाँ !!
वहीं कहीं मैं भी।
हाय-हाय करते हुए
भाग चले लोग
मैं भागता
गठरी है सिर पर, कन्धे पर बालक
फटे हुए अँगोछे से बँधी हुई
बच्ची है, कसी हुई पीठ पर।

पूँजीवादी संस्कृति के प्रति घृणा के स्वर—

मुक्तिबोध की कविता में पूँजीवादी संस्कृति के प्रति घृणा के स्वर स्पष्ट सुनाई देते हैं।

देखिए, तार-सप्तक में संकलित 'पूँजीवादी समाज के प्रति' कविता की कुछ पंक्तियाँ—

छोड़ो हाथ, केवल घृणा और दुर्गन्ध
तेरी रेशमी वह संस्कृति अंध
देती क्रोध मुझको, खूब जलता क्रोध
तेरे रक्त में भी सत्य का अवरोध
तेरे रक्त से भी घृणा आती तीव्र
मुझको देख मितली उमड़ आती शीघ्र
तू है मरण, तू है रिक्त, तू है व्यर्थ
तेरा ध्वंस केवल एक तेरा अर्थ।

वर्गहीन शोषण-मुक्त समाज की ललक—

मुक्तिबोध में वर्गहीन शोषण-मुक्त समाज की ललक थी। वह कहते हैं—

समस्या एक
मेरे सभ्य नगरों और ग्रामों में
सभी मानव
सुखी, सुन्दर व शोषण-मुक्त
कब होंगे ?

मुक्तिबोध की काव्याभिव्यक्ति—

(अनुभव-जगत के अन्तः-बाह्य पक्षों का समन्वय)

मुक्तिबोध की मान्यता है कि जितनी तीव्रता से घटनाओं का द्वन्द्व बाह्य-जगत में चलता है, उतनी ही तीव्रता मानसिक जगत के द्वन्द्व में रहती है। मुक्तिबोध के काव्य में जहाँ बाह्य-जगत के द्वन्द्व-चित्रण के लिए मानसिक वृत्तियों को माध्यम बनाया गया है, वहीं अंतर्जगत के द्वन्द्व की अभिव्यक्ति का माध्यम बाह्य जगत की विभिन्न क्रिया-प्रतिक्रियाएँ हैं। अन्तः-बाह्य पक्षों का यह सुन्दर समन्वय निम्नलिखित पंक्तियों में देखिये—

मैदानी हवाओं में
चमकती चिलमिलाती दूर

वह भूरी पहाड़ी, या उपेक्षित तथ्य का टीला
कि सतही जानकारी में अजाना
ज़िन्दगी का स्तर तुम्हारी दृष्टि में
भूरी पहाड़ी सा खड़ा वीरान
तुम मेरे लिए वैसे कठिन बंजर
खड़े भूरे शिखर।

मुक्तिबोध और फ़ैन्टेसी

मुक्तिबोध की कविताओं के दो रूप मिलते हैं—छोटी कविताएँ तथा लम्बी कवितायें, फ़ैन्टेसी-विधान का प्रयोग उनकी लम्बी कविताओं, यथा—ब्रह्मराक्षस, चाँद का मुँह टेढ़ा, लकड़ी का बना रावण आदि में हुआ है। मुक्तिबोध ने अमानवीय अवस्था में पनपे रुग्ण सौन्दर्य-बोध का परित्याग कर प्रगतिशील सौन्दर्य-बोध का ग्रहण किया है। 'ब्रह्मराक्षस' कविता में मुक्तिबोध की परिकल्पना 'याज्ञवल्क्य-स्मृति' की मान्यता से सर्वथा भिन्न एवं पूर्णतः नवीन है। 'याज्ञवल्क्य स्मृति' के अनुसार पर-पत्नी अथवा ब्राह्मण-धन का हरण करने वाला किसी निर्जन वन-प्रदेश में ब्रह्मराक्षस हो जाता है, जहाँ उसे न कुछ खाने को मिलता है, न पीने को। वह भटका-भटका फिरता है, पर मुक्तिबोध का व्यक्ति 'चेतना का प्रतीक ब्रह्मराक्षस' सब कुछ प्राप्त होने पर अधिक और अधिक तथा उत्तम और उससे भी उत्कृष्ट प्राप्ति-हेतु आजीवन अतृप्ति की प्यास में छटपटाता रहता है तथा अपने अन्तर की शून्यता में निर्वासन भोगता है।

इसी प्रकार 'चाँद का मुँह टेढ़ा' कविता में 'चाँद' परम्परागत अमानवीय व्यवस्था के सौन्दर्य-बोध का प्रतीक है, जबकि आज के 'सौन्दर्यादर्श' पूर्णतः बदल गये हैं, जिनका बोध करा पाने में परंपरागत उपमान एवं प्रतीक सर्वथा असमर्थ हैं, इसीलिए नई कविता के कवि को चाँद कुरूप नज़र आता है।

मुक्तिबोध के प्रतीक

मुक्तिबोध की समस्त कविता प्रतीकात्मक है। उनकी कविता की पंक्ति, शीर्षक और शब्द-शब्द में प्रतीक है। पारम्परिक प्रतीकों का प्रयोग मुक्तिबोध ने अत्यल्प ही किया है, क्योंकि उनकी शब्दावली में 'उनके देवता कूच कर गये हैं'।

नवीन व्यञ्जना के लिए नवीन प्रतीकों की सर्जना सर्वथा स्वाभाविक है, अतः मुक्तिबोध के अधिकांश प्रतीक सर्वथा नूतन अर्थ की अभिव्यञ्जना देते हैं। उनके काव्य में प्रयुक्त कुछ प्रतीक एवं उनसे अभिव्यञ्जित अर्थ के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

प्रतीक	**अभिव्यञ्जित अर्थ**
चाँद	पूँजीवादी वर्ग
कंस	शोषक एवं क्रूर सत्ता
भैरव	शोषित वर्ग
पोस्टर	क्रान्तिधर्मिता
अँधेरा	मध्यम-वर्ग के संस्कारों की व्यवस्था
चम्बल की घाटी	आधुनिक लूट-पाट से युक्त व्यवस्था

मुक्तिबोध की भाषा—मुक्तिबोध की भाषा पर अनगढ़ एवं ऊबड़-खाबड़ होने का आरोप है, किन्तु उनकी भाषा उनके भावों को व्यक्त करने में कबीर की भाषा के समान सशक्त है, क्योंकि वह सीधी और सपाट है, उसमें तनिक भी लाग-लपट नहीं है, किन्तु

उनकी कविता में बौद्धिकता के आग्रह, मानसिक जटिलता एवं नवीन प्रतीक-विधान उसे अवश्य दुर्बोध बना दिया है।

मुक्तिबोध की भाषा में दो रूप देखने को मिलते हैं, एक वह—जिसमें अँग्रेजी, उ मराठी, संस्कृत आदि भाषाओं के प्रचलित शब्दों का प्रयोग है, यथा—शेवरलेट, दा तिरस्कृता आदि तथा दूसरा वह जिसमें उन्होंने नवीन शब्दों को गढ़ा है, यथा—'रक्त' 'रक्ताल', 'रोग' से 'रोगीला', 'अंगार' से 'अंगारी' तथा 'साँवली' से 'सँबलाई' आदि।

जहाँ तक 'नई कविता' में स्थान का प्रश्न है 'मुक्तिबोध' नई कविता सर्व-सशक्त कवि हैं, जिनमें नई कविता अपने पूर्ण रूप में अभिव्यक्त हुई है।

३. वैद्यनाथ नागार्जुन
(सन् १९१०—६ नवम्बर, १९९८)

जीवन-परिचय

श्री नागार्जुन का पूरा नाम वैद्यनाथ मिश्र नागार्जुन था। आपका जन्म १९१० दरभंगा (बिहार) में हुआ। आपका जीवन अत्यन्त अभावमय परिस्थितियों में बीता। ज आप चार वर्ष के थे तभी माता का स्वर्गवास हो गया। पिता से भी सुखद पितृव्य प्राप्त नहीं हुआ। यदि इस अभाव की कहीं किसी ने कुछ पूर्ति की तों स्वामी सहजानन्द ने जिन्होंने इन्हें अभावग्रस्त जीवन में आस्था और विश्वास प्रदान किया तथा विपरीत परिस्थितियों में भी सरल, निश्छल तथा सबके प्रति आत्मीय बने रहने वाला वह व्यक्तित्त्व प्रदान किया जिसके कारण यह सभी के प्यारे बाबा थे। संघर्षमय, अभावग्रस्त पर स्वाभिमानी, कुसुम-मृदु पर वज्र-कठोर, कलम के बल पर जीने वाले यह सबके प्यारे बाबा यहाँ का सब यहीं छोड़कर ६ नवम्बर १९९८ को दिवंगत हो गये।

साहित्यिक परिचय

श्री नागार्जुन बहुमुखी प्रतिभा-सम्पन्न-साहित्यकार थे। इनके साहित्यिक जीवन का आरम्भ एक प्रकार से १९३५ से होता है, जब इनकी कविता 'विश्वबन्धु' में लाहौर से प्रकाशित हुई, तत्पश्चात् साहित्य की विविध विधाओं में जीवनान्त यह लिखते ही रहे।

रचनायें तथा सम्पादन

सम्पादन—श्री नागार्जुन ने विश्वबन्धु (साप्ताहिक) तथा दीपक (मासिक) एवं उर्दू-साहित्य (मासिक) तीन पत्रों का सम्पादन किया।

काव्य-रचनायें—प्यासी पथराई आँखें, युग-धारा, सतरंगी।

(१) कविता-संकलन—पंखों वाली, तालाब की मछलियाँ, हज़ार-हज़ार बाहों वाली, पुरानी जूतियों का कोरस, रत्नगर्भा, आदि।

(२) खण्ड-काव्य—भस्मांकुर।

(३) लघु काव्य—शपथ, प्रेम का बयान, खून और शोले, शपथ आदि।

उपन्यास—दुखमोचन, रतिनाथ की चाची, कुम्भीपाक आदि।

निबन्ध-संग्रह—बमभोलेनाथ।

इनके अतिरिक्त नागार्जुन ने मैथिली भाषा तथा संस्कृत-भाषा में भी रचनाएँ कीं।

नागार्जुन की कविता का स्वरूप

नागार्जुन का नाम प्रगतिशील कवियों में लिया जाता है। किन्तु, वह वर्गवादी नहीं

थे, वह समस्त जनता के कवि थे, वर्गमुक्त तथा वादमुक्त। नागार्जुन ने जीवन के कठोर यथार्थ को कल्पना-लोक में नहीं देखा था, यथार्थ में भोगा था, पर यथार्थ की कठोरता ने उनमें कटुता उत्पन्न न कर दयार्द्रता का भाव जगाया था।

नागार्जुन की कविता बहुरंगी है, उसमें एक ओर प्रेम का स्निग्ध चित्र है, दूसरी ओर शोषित-पीड़ित समाज का दर्द, तीसरी ओर आज के राजनीतिक परिवेश का यथार्थ-दर्शन तथा चौथी दिशा मध्य-वर्गीय समाज के उस व्यक्ति की जीवन-समस्या को चित्रित करने की है जो घर के भीतर आर्थिक दरिद्रजीवन जीता है, पर समाज में स्तर बनाये रखने के लिए उस पर आवरण डालने का प्रयास करता है और बेबसी में क्रोधाभिभूत हो क्रोध बेबस बच्चों पर उतारता है। उसी दिशा में प्राइमरी-शिक्षा की फटे-हाल दशा तथा दीन अध्यापक एवं उसके बच्चों की बेबसी भी है। पाँचवी दिशा है उस व्यक्तित्त्व का चित्र जो विपत्तियों के झंझावात में भी अचल है, दृढ़ है, अदम्य है और संघर्षरत है।

नागार्जुन के काव्य में उक्त सभी दिशाएँ प्रतीकों में व्यंजित हुई हैं। देखिए सभी के सफल कुछ चित्र—

प्रेम का स्निग्ध-चित्र प्रकृति-चित्रण के माध्यम से—

> **सिकुड़ गई रग-रग, झुलस गया अंग।**
> **बनाकर ठूँठ, छोड़ गया पतझार**
> **उलंग असगुन-सा खड़ा रहा कचनार**
> **अचानक उमगी डालों की संधि में छरहरी टहनी**
> **पौर-पौर में गये थे टेसू**
> **वह तुम थीं।**

यहाँ 'पतझार' वृद्धावस्था का प्रतीक है तथा 'छरहरी टहनी' कवि की सहचरी के मधुर स्पर्श का।

शोषित पीड़ित समाज का दर्द एवं जनता पर अत्याचार के प्रति तीव्र आक्रोश—

> **कैसा लगेगा तुम्हें ?**
> **जंगली सुअर यदि ऊधम मचाएँ**
> **तहस-नहस कर डालें फसलें**
> **देखकर पदमर्दित उत्कट सुरभिवाली दूधिया बालें**
> **देखकर भूलुण्ठित कुचली कनक-मञ्जरियाँ**
> **टूट-टूक हो यदि हृदय लोकलक्ष्मी का।**

राजनीतिक परिवेश का यथार्थ दर्शन—

> **(जन-नेताओं पर तीव्र व्यंग)**
> **हमें सीख दो शान्ति और संयम-जीवन की**
> **अपनी ख़ातिर करो जुगाड़ अपरिमित धन की**
> **बेच-बेचकर गाँधी जी का नाम**
> **बटोरो वोट**
> **हिलाओ शीश**

निपोरो खीस
बैंक-बैलेंस बढ़ाओ।

मध्यवर्गीय व्यक्ति की बेबसी का चित्र —

धुन खास शहतीरों पर की बारहखड़ी विधाता बाँचे।
फटी भीत है, छत चूती है, आले पर बिसतुइया नाचे।
लगा-लगा बेबस बच्चों पर मिनट-मिनट में पाँच तमाचे।
इसी तरह से दुखी मास्टर गढ़ता है आदम के साँचे।

उक्त चित्र में आज की प्राइमरी शिक्षा की फटेहाल-दशा पर एक तीखा व्यंग है साथ ही शिक्षा प्राप्त कर रहे बच्चों एवं दीन अध्यापक की बेबसी भी चित्रित है।

दृढ़-व्यक्तित्त्व का अदम्य अचल चित्र —

(प्रकृति-चित्रण के माध्यम से)
बादल को घिरते देखा है।
मैंने तो भीषण जाड़ों में
नभ-चुम्बी कैलाश-शीर्ष पर
महामेघ को झंझानिल से
गरज-गरज भिड़ते देखा है
बादल को घिरते देखा है।

उक्त पंक्तियों में प्रकृति-चित्रण के माध्यम से कवि-व्यक्तित्त्व का चित्रांकन है।

इस प्रकार नागार्जुन की समस्त अनुभूतियाँ अछूती हैं और क्वाँरी हैं, जिनमें न वासना है, न वादात्मकता और न दिगभ्रमिता अपितु, एक, अटल दृढ़ता है और है एक दिशाबोध युग के लिए अनागत की दिशा में।

बेबाकी एवं बेलौसी —

नागार्जुन बेबाक और बेलौस कवि थे। भारत की आज़ादी के बाद पंचवर्षीय योजनाएँ बनीं और उनके माध्यम से भारत की भोली जनता को मूर्ख बनाया जाता रहा। सामान्य जनता आज़ादी के लिए पिस गई, पर लाभ उठाया चन्द नेताओं ने। देखिए कुछ चित्र और मार्मिक व्यंग—

आज़ादी की कलियाँ फूटीं
पाँच साल में होंगे फूल
पाँच साल में फल निकलेंगे
रहे पन्त जी झूला झूल,
पाँच साल कम खाओ भैया
ग़म खाओ दस-पन्द्रह साल
अपने ही हाथों तुम झोंको
यों अपनी आँखों में धूल।

तथा—

व्यर्थ हुई साधना, त्याग कुछ काम न आया।
कुछ ही लोगों ने स्वतंत्रता का फल पाया।

इस प्रकार विषय की दृष्टि से नागार्जुन की कविता विविधमुखी है तथा बेबाकी की दृष्टि से बेजोड़।

भाषा–नागार्जुन की भाषा कविता के निराकार भावों को साकार रूप प्रदान करती है। भाषा के कारण ही भाव श्रोता एवं पाठक तक पहुँचते हैं। कवि नागार्जुन की कविता की भाषा के विषय में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि वे सरल और सुबोध शब्दों में गंभीर बात कहने में समर्थ हैं।

लोकचेतना और यथार्थता से परिपूर्ण नागार्जुन की कविता ने तीखे व्यंग्य को ही अपना माध्यम चुना है। आपातकाल में भारत की सरकार की निरंकुशता को नागार्जुन की भाषा ने कितना अधिक नोकीलापन प्रदान किया है-

बढ़ी बधिरता दस गुनी, बने बिनोबा यूक।
धन्य धन्य वह धन्य वह, शासन की बन्दूक।
सत्य स्वयं घायल हुआ, गई अहिंसा चूक।
जहां-तहां दगने लगी, शासन की बन्दूक।
इस हिटलरी गुमान पर सभी रहे हैं थूक।
जिसमें कानी हो गई, शासन की बन्दूक।

नागार्जुन ने शब्दों का चयन भाषा और भाव में प्रवाह के लिए किया है। यही कारण है कि इनकी समस्त भाषाशैली एक ओर सरल तो है ही, साथ ही बड़ी प्रवाह और प्रभावपूर्ण भी है। प्रारम्भिक काल से आज तक भाषाशैली की दृष्टि से नागार्जुन की कविताओं में अनेक मोड़ आये हैं, फिर भी उनका मूल स्वर नहीं बदला है। समसामयिक वादों तथा प्रयोगों के झमेले से कवि नागार्जुन दूर ही रहे हैं। उन्होंने अपने सामान्य अनुभवों के आधार पर ही अपनी रचनाओं के कलेवर का निर्माण किया है। आपकी लगभग सभी कविताओं में सुन्दर और आकर्षक कलात्मक अभिव्यक्ति हुई है। इसके साथ ही अपने भाव के चयन का भी सफल निर्वाह किया है।

प्राकृतिक शोभा में मानव का प्रमुख सहयोग होता है तथा उस शोभा में अपनी भागीदारी मनुष्य को कितनी प्रसन्नता प्रदान करती है, इस भाव को नागार्जुन ने कितनी सरल और सफल भाषा के द्वारा साकार किया है, इसके लिए कुछ पंक्तियां उद्धृत करना पर्याप्त होगा-

भीनी भीनी खुशबू वाले,
रंग-बिरंगे,
यह जो इतने फूल खिले हैं।
कल इनको मेरे प्राणों ने नहलाया था।
कल, इनको मेरे सपनों ने सहलाया था।
पकी सुनहली फसलों से जो,
अबकी यह खलिहान भर गया।
मेरी रग-रग के शोणित की बूँदे इसमें मुसकाती हैं।

(२) छन्द-योजना–नागार्जुन ने अपनी कविता में परम्परागत छन्दों के साथ-साथ मुक्त छन्द का भी सफलतापूर्वक प्रयोग किया है।

(क) गेय तुकान्त छन्द-नागार्जुन ने अपनी कविता का आरम्भ गाने योग्य तुकान्त छन्दों से किया था। इस प्रकार के छन्दों में उन्होंने पर्याप्त रचनाएँ लिखी हैं। 'उनको प्रणाम' कविता से कुछ पंक्तियां उद्धृत हैं-

जो नहीं हो सके पूर्णकाम,
मैं उनको करता हूँ प्रणाम।
कुछ कुंठित औ कुछ लक्ष्य-भ्रष्ट,
जिनके अभिमंत्रित तीर हुए,
रण की समाप्ति के पहले ही,
जो वीर रिक्त तूणीर हुए।
उनको प्रणाम!

(ख) मुक्त छन्द-प्रयोगवाद तो सन् १९४३ के पश्चात आया, जिसने मुक्त छन्द को स्थायी मान्यता प्रदान की, पर निराला ने सन् १९२८ से ही मुक्तछन्द में रचनाएँ आरम्भ कर दी थीं। नागार्जुन की बाद की अधिकांश रचनाएँ मुक्त छन्द में ही हैं, पर उनकी मधुरता और प्रभावशीलता में अन्तर नहीं आया है। **'गुलाबी चूड़ियां'** नामक कविता से कुछ पंक्तियां उदाहरण के रूप में प्रस्तुत हैं-

प्राइवेट बस का ड्राइवर है तो क्या हुआ,
सात साल की बच्ची का पिता तो है।
सामने गियर के ऊपर,
हुक से लटका रक्खी है,
कांच की चार चूड़ियां गुलाबी।
बस की रफ्तार के मुताबिक
हिलती रहती हैं।

(३) अलंकार-योजना-प्रगतिवाद के रूप में छायावाद के भावपक्ष की तथा प्रयोगवाद के रूप में छायावाद के कलापक्ष की प्रतिक्रिया हुई। प्रयोगवादी कवियों ने कविता की समस्त प्राचीन मान्यताओं को नकारने का प्रयास किया है। नागार्जुन ने छायावादी कालखण्ड में काव्य रचना आरम्भ की थी और प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता, अकविता आदि काव्य आन्दोलनों के तेवर देखते हुए साहित्य सेवा में संलग्न रहे हैं, इसलिए आपकी कविता में अलंकारों का सर्वथा अभाव नहीं है। यह अवश्य है कि नागार्जुन ने अलंकारों को अपनी कविता का भार नहीं बनने दिया है। अलंकार आपकी कविता में खोजने पर ही देखे जा सकते हैं। जो स्वाभाविक अलंकार हैं, उनका ही प्रयोग आपकी कविता में अनजाने में हो गया है। आपकी कविता से कुछ अलंकारों के उदाहरण प्रस्तुत हैं-

(१) अनुप्रास-कृतकृत्य नहीं जो ही पाये,
प्रत्युत फांसी पर गये झूल।
प्रतिकूल-परिस्थिति ने जिनके,
कर दिये मनोरथ चूर-चूर।

(२) यमक- परिधि यह संकीण, इस मे ले न सकतें सांस,
गले को जकड़े हुए है यम-नियम की फांस।
X X X
क्रोध का अक्रोध से कर अन्त,
बनूँ मैं आदर्श मानव संत।

(३) उपमा- घोर अपराधी सदृश हो नतवदन निर्वाक,
बाप दादों की तरह रगडूँ न मैं निज नाक।
X X X
इन्द्रनील की माला डाले शंख-सरीखे सुघड़ गले में,
कानों में कुवलय लटकाये, शतदल रक्त कमल वेणी में।

4. शमशेरबहादुर सिंह

(३ जनवरी, १६११-१२ मई, १६८३)

हिन्दी के नये कवियों की पंक्ति में शमशेर बहादुर सिंह का विशिष्ट स्थान है। दूसरा सप्तक (१६५१) के कवियों में उन्हें स्थान मिला है। परन्तु वे दीर्घकाल से अपने कवि कर्म का निर्वाह करते चले आ रहे हैं। सप्तकों के उन कवियों में, जिन्होंने एक ही वैयक्तिकता और सामाजिकता में अनुराग रखा है कदाचित् उन्हीं में इन दोनों भावनाओं में कोई विशेष संघर्ष या द्वन्द्व नहीं हुआ है। उनका कवि व्यक्तित्व व्यष्टि और समाष्टि दोनों को ही बिना किसी उलझाव को लेकर आगे बढ़ा है। कतिपय कविताओं में उन्होंने एक आदर्श प्रगतिशील कवि के रूप में सामाजिक चेतना का प्रश्रय दिया है तो अन्यत्र प्रयोगवादी रूप में अधिक अनुभूति-प्रवणता प्रदर्शित की है। प्रयोगात्मक भी उनमें कदाचित् अज्ञेय से अधिक और परिवर्तित रूप की है। हिन्दी साहित्य कोश में लिखा है। "प्रयोगवाद और नई कविता के प्रस्तुतकर्ताओं में वे अग्रणी हैं। उनकी रचना-प्रकृति हिन्दी में अप्रतिम है और अनेक संभावनाओं से युक्त है, हिन्दी के नये कवियों में उनका नाम प्रथम पंक्ति में है। 'अज्ञेय के साथ शमशेर ने हिन्दी कविता में रचना-पद्धति की नई दिशाओं को उद्घोषित किया है और छायावादोत्तर काव्य' को एक गति प्रदान की है।"

जीवन-परिचय-शमेशर बहादुर का जन्म 3 जनवरी, 1911 ई. को देहरादून में हुआ था। जाट परिवार में जन्मे शमशेर ने सन् 1933 ई. में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से बी. ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। विवाह सन् 1930 ई. में हुआ। परन्तु पाँच वर्ष पश्चात क्षयरोग से ग्रस्त होकर पत्नी की मृत्यु हो गयी। शमशेर ने कला-विद्यालय में भी शिक्षा प्राप्त की किन्तु बाद में कविता की अपेक्षा चित्रण गौण होता गया। 'रूप में', 'कहानी', 'नया साहित्य' आदि पन्नों के सम्पादन से सम्बद्ध रहे हैं। संप्रति दिल्ली में रहकर 'हिन्दी-उर्दू-कोश' की निर्माण योजना में संलग्न रहे। शमशेर जी का निधन 12 मई, 1983 को हुआ।

व्यक्तित्त्व

व्यक्तित्त्व और कृतित्त्व दोनों में शमशेरबहादुर सिंह साम्यवादी विचारों से प्रभावित हैं। अपनी कविता में शमशेरबहादुर सिंह ने विदेशी एवं देशी कवियों दोनों के ही प्रभावों को ग्रहण किया है। ऐसा उन्होंने स्वयं स्वीकारा है। टेकनीक के क्षेत्र में एजरापाउण्ड उनके आदर्श रहे हैं। शमशेर 'प्रगति' और 'प्रयोग' दोनों के कवि हैं।

कृतित्त्व

साहित्य के क्षेत्र में शमशेरबहादुर सिंह की प्रतिभा बहुमुखी थी। कविता, कहानी स्केच, निबंध, संपादन, अनुवाद, कोश-निर्माण आदि सभी क्षेत्रों में आपका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा, जिसका संक्षिप्त विवरण निम्नवत् है—

रचनाएँ

काव्य-संकलन—कुछ कवितायें, कुछ और कवितायें, दूसरे सप्तक में संकलित कवितायें, कहीं बहुत दूर से सुन रहा हूँ आदि।

कहानी-स्केच—प्लाट का मोर्चा।

निबंध—दोआब।

अनुवाद—कामिनी, हुश्शू, पी कहाँ।

संपादन—कहानी, नया साहित्य, रूप में, आदि पत्रों का सम्पादन।

कोश-निर्माण—हिन्दी-उर्दू-कोश।

काव्यत्त्व—दूसरे सप्तक के कवियों में शमशेरबहादुर सिंह का प्रमुख स्थान है। इनकी कविता 'प्रगतिवाद' एवं 'प्रयोगवाद' दोनों कूलों का स्पर्श करते हुए प्रवाहित हुई है, तथापि यह किसी वाद के घेरे में घिरे हुए नहीं थे।

शमशेरबहादुर सिंह की कविता की विशेषताएँ संक्षेप में निम्नलिखित हैं—

१. समसामयिकता।

२. जीवन से सम्बद्धता।

३. ध्वन्यात्मकता।

४. रूप-विधान के प्रति विशेष सजगता।

५. जटिलता एवं दुरूहता।

समसामयिकता एवं समकालीन मार्मिकता का एक बिम्बचित्र निम्नलिखित पंक्तियों में देखिये—

सत्य का क्या रंग
पूछो एक संग
एकः जनता का
दुःखः एक
हवा में उड़ती पताकाएँ
अनेक
दैन्य दानव ! क्रूर स्थिति।
कंगाल बुद्धि ! मजदूर घर भर
एक जनता का अमर वर
एकता का स्वर—
अन्यथा स्वातन्त्र्य इति।

उक्त पंक्तियों में कवि अपने युग के प्रति जागरूक है। उसमें शोषित जनता के प्रति सहानुभूति है, पर वह निराशा की भाषा नहीं बोलता, मुक्ति का मूल-मंत्र बताता है 'एकता' साथ ही जनता को सचेत भी करता है कि इस मूलमंत्र का अनुसरण न करने पर सदा-सदा के लिए उसके गले में दासता का पट्टा पड़ जाना है।

प्रगतिवाद के इस स्वर के साथ कवि में प्रयोगशीलता के स्वर भी सुनाई देते हैं। मध्यम-वर्ग की निराशा निम्नलिखित पंक्तियों में देखिये—

(क) खत्म हमदर्दी, खत्म साथियों के साथ
(ख) ज़र्द आहें हैं, ज़र्द है यह शाम
सभी राहें हैं नाकाम।

कला-पक्ष—शमशेरबहादुर सिंह की कविता में कला-पक्ष प्रबल है। रूप-विधान के प्रति उनका अतिशय लगाव है। उनमें अतिशय शब्द-मोह, सूक्ष्म प्रतीक-विधान एवं बिम्ब-प्रधानता है, पर उनके बिम्ब खण्डित हैं और उपमान-प्रयोग में चामत्कारिकता-प्रवृत्ति लक्षित होती है, जिसके कारण उनकी कविता में प्रभावात्मकता की अपेक्षा दुरूहता तथा बोझिलता अधिक लक्षित है।

एक उदाहरण देखिये—

सुलगते आकाश-वन में
काल गौहर और जमुर्रद्र के निशान
उड़ रहे हैं
आखिर क्यों मुस्कराते हैं शराबी अक्षर ?

अलंकार—शमशेर का प्रिय अलंकार 'उपमा' है। उनके अधिकांश उपमान प्रकृति से लिए गये हैं। उनकी उपमान-योजना में स्थूल से सूक्ष्म की सफल अभिव्यक्ति है। दो-एक उदाहरण दृष्टव्य हैं—

समुन्दर की तरह
ओ, मैं बेचैन सी हो जाती हूँ
उनकी लहरों की तरह
ज्वारभाटा सा अजब जाने क्यों
उठने लगता है ख्यालों में मेरे।

एक अन्य उदाहरण देखिए—

भोर का नभ
राख से लीपा हुआ चौका
अभी गीला पड़ा है
बहुत काली सिल जरा से लाल केसर से
कि जैसे धुल गई हो।

उपर्युक्त उदाहरणों में सार्थक उपमान-विधान के साथ-साथ सुन्दर बिम्ब-विधान भी लक्षित है।

भाषा एवं वाक्य-विन्यास—भाषा के सम्बन्ध में शमशेर की एक ही मान्यता है कि 'शब्द ऐसे हों जो भावाभिव्यक्ति में पूर्णतः समर्थ हों' अतः शमशेर को अपनी कविता के लिए संस्कृत, उर्दू, फ़ारसी, अंग्रेज़ी कहीं से भी शब्द लेने में तनिक भी हिचक नहीं थी।

उनकी कविता में संस्कृत भाषा के शब्द—मनुष्योत्तर, पराकाष्ठा, जिज्ञासु, उर्दू-फारसी के शब्द आख़िर, रुख़ तथा अँग्रेजी भाषा के शब्द—माडर्निस्टिक, एटामिक आदि यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। भाषा के इस रूप से शमशेर की कविता निश्चय ही सशक्त हुई है।

शमशेर का वाक्य-विन्यास भी अद्‌भुत है। कहीं वाक्य साधारण हैं तो कहीं इतने छोटे कि एक शब्द से ही वाक्य का काम लिया गया है, यथा—

कुछ नहीं लाया
प्रेम
अश्रु
अश्रु
अश्रु
पुनः
पुनः
पुनः

छन्द-विधान—शमशेरबहादुर सिंह ने कविता, गीत, ग़ज़ल, रुवाईयाँ सभी कुछ लिखी हैं। छन्दों के क्षेत्र में कहीं उन्होंने मत्त-सवैया तथा शिवे छन्दों का प्रयोग किया है तो कहीं मिश्रित और कहीं मुक्त छन्दों का। शमशेरबहादुर सिंह मुक्त छन्दों के प्रयोग में सर्वाधिक सफल हुए हैं। उनके मुक्त छन्दों में प्रवाहात्मकता है, लयात्मकता है तथा कलात्मकता है, पर कहीं-कहीं उनके छन्द, मात्र चमत्कार-प्रदर्शन की भावना से सृजित प्रतीत होते हैं।

छायावादोत्तर कालीन नये कवियों में शमशेरबड़ादुर सिंह 'प्रगतिवादी' एवं 'प्रयोगशील' नई कविता के कवि' दोनों का सफल प्रतिनिधित्त्व करते हैं।

५. भवानीप्रसाद मिश्र
(२६ मई, १६१३—२० फरवरी, १६८५)

जीवन-परिचय

पं॰ भवानीप्रसाद मिश्र का जन्म २६ मई, १६१३ को मध्य-प्रदेश के होशंगाबाद ज़िले के टिगरिया ग्राम में हुआ था। आप मध्यवर्गीय कान्यकुब्ज ब्राह्मण परिवार के थे। आपके पिता का नाम पं॰ सीताराम मिश्र तथा माता का नाम श्रीमती गोमती देवी था। मिश्र जी की शैक्षिक योग्यता बी. ए. थी। मिश्र जी का समस्त जीवन संघर्षमय परिस्थितियों में व्यतीत हुआ। १६४२ के स्वतन्त्रता-आन्दोलन में भाग लेने के कारण मिश्र जी ने ३ वर्ष का कारावास-जीवन भी व्यतीत किया। २० फरवरी १६८५ को नरसिंहपुर में आपने देह त्यागी।

व्यक्तित्त्व एवं कृतित्त्व

अपने व्यक्तित्त्व एवं कृतित्त्व में मिश्र जी एक ओर अद्वैतवाद, कवीन्द्र रवीन्द्र एवं गाँधीवादी दर्शन से प्रभावित हैं तो दूसरी ओर अँग्रेज़ी कवि वर्ड्सवर्थ तथा ब्राउनिंग से।

काव्य-कृतियाँ (काव्य-संकलन)

(१) दूसरा सप्तक में संकलित कविताएँ, (२) चकित है दुख, (३) अँधेरी कविताएँ (४) गाँधी पंचशती (५) बुनी हुई रस्सी, (६) खुशबू के शिलालेख, (७) शतदल।

काव्य-विषय—मिश्र जी संवेदना के कवि हैं। उनके काव्य में दैनिक जीवन के सुख-दुख अत्यंत सहज रूप में व्यञ्जित हुए हैं। उनके काव्य में प्रेम की अनुभूतियाँ हैं, सौन्दर्य की प्यास है, रूप का आकर्षण है और समर्पण की भावना है।

काव्य-सौष्ठव—मिश्र जी की अभिव्यक्ति अत्यन्त सहज, संयमित और शालीन तथा अनुभूति-आधारित है, उसमें कहीं भी सप्रयास अभिव्यक्ति की कृत्रिमता नहीं आने पाई है।

मिश्र जी का 'प्रकृति-चित्रण' लोक-जीवन-सम्बद्ध है। भाषा बोल-चाल की, पर अभिव्यक्ति में सशक्त है। कविता में सर्वत्र लयात्मकता, प्रवाहात्मकता तथा तुकात्मकता है। भाषा में सर्वत्र शब्दों का बोलचाल का रूप है चाहे वे हिन्दी के हों अथवा उर्दू के उसमें तत्समता का आग्रह नहीं है, यथा—मसान, हुजूर, मर्जी, गाहक, किसिम-किसिम आदि, पर तत्सम शब्द भी वर्जित नहीं हैं, यथा—मरण, शरण, व्यस्त, निस्तब्ध आदि।

देखिए, मिश्र जी के काव्य की कुछ सहज निश्छल अभिव्यक्तियाँ—

जी हाँ हुजूर, मैं गीत बेचता हूँ
जी, बहुत ढेर लग गया, हटाता हूँ,
गाहक की मर्जी, अच्छा जाता हूँ।
मैं बिल्कुल अन्तिम और दिखाता हूँ—
या भीतर जाकर पूछ आइए आप,
है गीत बेचना वैसे बिल्कुल पाप।
क्या करूँ मगर लाचार, हारकर
गीत बेचता हूँ,
जी हाँ, हुजूर मैं गीत बेचता हूँ,
मैं किसिम-किसिम के गीत बेचता हूँ।

(गीतफरोश काव्य से)

एक अन्य उदाहरण देखिए, कितनी निखरी हुई स्पष्टता है—

कविता को
बिखराकर देखने से
सिवा रेशों के क्या दिखता है
लिखने वाला तो
हर बिखरे अनुभव के रेशे को
समेटकर लिखता है !

६. नरेश मेहता
(१५ फरवरी, १९२२.......)

जीवन-परिचय

नरेश मेहता का जन्म १५ फरवरी १९२२ को शाजापुर (मालवा) के एक सम्पन्न गुजराती ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। १९२२ में आपने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से एम. ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। १९५६ से आप स्वतंत्र लेखन के क्षेत्र में अवतरित हुए।

व्यक्तित्त्व एवं कृतित्त्व

मेहता जी का व्यक्तित्त्व एवं कृतित्त्व अनेक प्रभावों से प्रभावित है—एक ओर पाण्डित्यपूर्ण पारिवारिक परिवेश दूसरी ओर विश्वविद्यालयी अध्ययन-काल के दौरान

आचार्य केशवप्रसाद मिश्र, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी एवं आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र का सान्निध्य तथा तीसरी ओर १९४२ का स्वाधीनता-आन्दोलन तथा काँग्रेस-कम्यूनिस्ट पार्टी से पन्द्रह वर्षों तक का सम्पर्क आपकी रचनाधर्मिता की पृष्ठभूमि में रहे हैं।

कृतित्त्व

आपका कृतित्त्व साहित्य के क्षेत्र में विविध-दिशोन्मुखी है। आपने 'ट्रेड-यूनियन' (साप्ताहिक) तथा 'कृति' (मासिक) का कुशल सम्पादन किया, छः वर्ष तक आकाश-वाणी के विविध केन्द्रों पर कार्यक्रम-अधिकारी रहे तथा १९५९ से स्वतंत्र-लेखन के क्षेत्र में पदार्पण किया।

रचनाएँ

साहित्य के क्षेत्र में आपकी लेखनी ने उपन्यास, कहानी, नाटक, रेडियो-एकांकी, निबन्ध, समालोचना, खण्ड-काव्य एवं स्वतन्त्र-कविताओं सभी का स्पर्श किया है। संशय की एक रात, महाप्रस्थान, प्रवाद-पर्व, शबरी आदि आपके प्रसिद्ध खण्ड-काव्य हैं तथा वनपाखी ! सुनो !!, बोलने दो चीड़ को, मेरा समर्पित एकान्त, उत्सव, अरण्या, अपांक्तेय एवं गाँधी-गाथा आदि आपके प्रसिद्ध कविता-संकलन हैं।

काव्य-सौष्ठव-मेहता जी छायावाद, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद की सीढ़ियों को पार करके नई कविता तक आये हैं, अतः इन धाराओं का प्रभाव आपकी कविता पर स्पष्ट लक्षित है। काँग्रेस-कम्यूनिस्ट पार्टी से आपके छः वर्ष तक सम्पर्क ने भी आपके काव्य को प्रभावित किया है, साथ ही वैदिक ऋचाओं के बिम्बों ने भी। 'संशय की एक रात' (खण्ड-काव्य) जो आपकी कीर्ति का प्रमुख आधार है, निराला जी की 'राम की शक्ति-पूजा' तथा दिनकर के 'कुरुक्षेत्र' से प्रभावित है।

मेहता जी का काव्य नई कविता के तत्वों से अनुप्राणित है, उसमें एक ओर चिन्तन-परक भावात्मकता है तथा दूसरी अभिनव-शिल्प।

काव्य के प्रमुख विषय-नरेश मेहता के काव्य के प्रमुख विषय हैं-प्रकृति, नारी, प्रेम, सौन्दर्य, संस्कृति, धर्म, मानवता तथा युद्ध और शान्ति।

उनके काव्य का लक्ष्य है लघु-मानव की प्रतिष्ठा और प्रयास है संयमित-शालीन काव्य।

नरेश मेहता मानवतावादी कवि हैं। उनमें एक ओर लघु-मानव की प्रतिष्ठा का प्रयास है और दूसरी ओर सामाजिक बोध है, उनमें एक ओर आधुनिक विसंगतियों की वेदना है तो दूसरी ओर निर्माण की आकाँक्षा और प्रेरणा।

भाषा एवं शिल्प-विधान

नरेश मेहता की भाषा प्रतीक-प्रधान है, कहीं अनलंकृत, सहज-स्वाभाविक-सौंदर्य में और कहीं पूर्णतः भूषित और सुसज्जित। देखिए, 'समय-देवता' के प्रारंभिक अंश की पंक्तियों में भाषा का सहज-स्वाभाविक-सौन्दर्य—

"मुझको मेरा टुण्ड्रा प्रिय है।
इन बर्फ-जंगलों में कोई भी पेड़ नहीं,
जिसकी छाया के छूने से ठण्डा मन होवे तिमिरमान,
दूर आर्कटिक के खेतो में मछली की खेती होती है।
मेरी पत्नी उसी बर्फ-गुफा में बैठी होगी आग जलाये"

भूषित तथा सुसज्जित भाषा में कुछ पंक्तियाँ देखिए 'प्रार्थना' कविता से उद्धृत्—

वहन करो,
ओ मन ! वहन करो,
सहन करो पीड़ा !!
सृष्टिप्रिया पीड़ा है
कल्पवृक्ष—
दान समझ, शीश झुका
स्वीकारो—
ओ मन करपात्री ! मधुकरि स्वीकारो !!
वहन करो, सहन करो,
ओ मन ! वरण करो पीड़ा !!

भाषा-शब्द-विधान

नरेश मेहता की भाषा में तत्सम, तद्भव तथा विदेशी तीनों प्रकार के शब्द पाये जाते हैं, यथा—

तत्सम-शब्द—सृष्टि-प्रिया, करपात्री, वीतराग, आम्रकुञ्ज, वात्याचक्र

तद्भव-शब्द—साँझ, पाखी, पोखर, छाँह।

विदेशी (अँग्रेजी भाषा के) शब्द—कोट, पियानो, कैम्प, चर्च।

इनके अतिरिक्त ब्रज-भाषा तथा बँगला के भी कुछ शब्द मिलते हैं तथा आवश्यकतानुसार नये शब्दों का सृजन भी किया गया है।

नरेश मेहता की काव्य-भाषा में श्रेष्ठ साहित्यिक भाषा के सभी गुण पाये जाते हैं, यथा—प्रेषणीयता, प्रवाहात्मकता, संगीतात्मकता, चित्रात्मकता एवं मधुरता आदि।

उपमान-विधान-नरेश मेहता का उपमान-विधान पूर्ण सशक्त है। उन्होंने प्रकृति, धर्म, दर्शन, संस्कृति एवं विज्ञान सभी से अपने उपमानों का चयन किया है।

छंद-विधान-मेहता के छंद-विधान में प्राचीन, नवीन तथा मिश्रित तीनों प्रकार के छन्दों को स्थान दिया गया है, पर प्रधानता नवीन मुक्त छन्दों की है।

इस प्रकार निश्कर्षतः हम कह सकते हैं कि छायावादोत्तर-कालीन कवियों में नरेश मेहता छायावाद, प्रगतिवाद एवं नई कविता का सेतु हैं।

७. धर्मवीर भारती
(२५ दिसम्बर, १९२६—४ सितम्बर, १९९७)

जीवन-परिचय

श्री धर्मवीर भारती का जन्म २५ दिसम्बर १९२६ को उत्तर-प्रदेश के इलाहाबाद नगर के अतरसुइया मोहल्ले में हुआ था। आप आजीवन शिक्षा एवं साहित्य-जगत से सम्बद्ध रहे। अपने विद्यार्थी-जीवन के पश्चात् आप इलाहाबाद विश्व-विद्यालय के हिन्दी-विभाग में प्रवक्ता-पद पर प्रतिष्ठित रहे। कुछ समय तक आपने हिन्दी के प्रतिष्ठित पत्र 'धर्मयुग' के सम्पादन का दायित्व भी वहन किया, पर आपका अधिकांश जीवन 'हिन्दी-साहित्य' की सेवा में ही व्यतीत हुआ। हिन्दी-साहित्य की सेवा में सतत् रत श्री धर्मवीर भारती ने ४ सितम्बर १९९७ को देह-परित्याग किया।

साहित्यिक सेवाएँ

श्री धर्मवीर जी एक लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार थे। अपनी साहित्य-सेवार्थ आप १६७२ में भारत-सरकार द्वारा 'पद्मश्री की उपाधि से विभूषित किए गये तथा १६८६ में 'उत्तर-प्रदेश-हिन्दी-संस्थान' ने आपको 'भारत-भारती, पुरस्कार से सम्मानित किया।

रचनाएँ

श्री धर्मवीर भारती बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न साहित्यकार थे। आपकी लेखनी ने हिन्दी-साहित्य की विविध विधाओं का स्पर्श किया है। आपकी प्रमुख कृतियाँ निम्नलिखित हैं:-

उपयास--१. गुनाहों का देवता, २. सूरज का सातवाँ घोड़ा

कहानी संग्रह-चाँद और टूटे हुए लोग।

एकांकी-नदी प्यासी थी।

निबंध-१. ठेले पर हिमालय, २. पश्यन्ती, ३. कहनी अनकहनी।

समालोचना-सिद्ध-साहित्य।

रिपोर्ताज-ब्रह्मपुत्र की मोर्चेबन्दी।

प्रबन्ध-काव्य-कनुप्रिया।

गीति-नाट्य-अंधा युग।

स्वतंत्र-कविताएँ

गीत

काव्य-कला-धर्मवीर भारती की आरम्भिक कविताओं में कैशोर भावुकता है जबकि उनकी 'अन्धा युग', 'कनुप्रिया' और 'सात गीत वर्ष' नामक परवर्ती कृतियों में उनकी काव्य-कला का परिष्कृत रूप दिखाई देता है। रूपासक्ति, मांसल प्रेम और वासना उनकी कविताओं के मुख्य स्वर हैं। ये स्वर इन फिरोजी होठों पर बरबाद मेरी जिन्दगी', 'उदास मैं', 'मुग्धा', 'गुनाहों का दूसरा गीत' जैसी कविताओं में देखे जा सकते हैं। कवि के लिए वासना उपेक्षणीय नहीं है। उसे तो वासना का विष भी अमृत प्रतीत होता है यदि उसमें प्रिया के रूप का संस्पर्श विद्यमान हो-

मुझे तो वासना का विष बना गया अमृत।
बशर्ते वासना भी हो तुम्हारे रूप से आबाद।

कवि का स्वर्ग-नरक में विश्वास नहीं है, प्रिया की छवि में ही उसे भगवान के दर्शन होते हैं-

अगर सच पूछो मेरी प्रान।
व्यर्थ है स्वर्ग, नरक अभिमान।
तुम्हारी मुस्कराहट में स्वर्ग
तुम्हारे आँसू में भगवान।

प्रेम और वासना के अतिरिक्त कवि भारती ने निर्माण और आस्था के स्वरों को भी मुखरित किया है। 'थके हुए कलाकार से' नामक कविता की निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए-

सृजन की थकन भूल जा देवता।
अभी तो पड़ी है धरा अनबनी,
अधूरी धरा पर नहीं है कहीं,
अभी स्वर्ग की नींव का भी पता,
सृजन की थकन भूल जा देवता।

आदिम गंध की तड़प और लोक-जीवन की रूमानी छवि की पकड़ भारती के काव्य की कुछ अन्य महत्वपूर्ण विशेषताएँ हैं। इसीलिए उन्होंने गीत अधिक लिखे हैं। लोक-परिवेश की मस्ती और उल्लास की अपेक्षा उनके गीतों में उदासी और सूनापन अधिक उभरता है-

घास के रास्ते उस बंसवट से
इक पीली-सी चिड़िया
उसका कुछ अच्छा-नाम
मुझे पुकारे ताना मारे
भर आयें आंखड़ियाँ
उन्मन यह फागुन की शाम है।

कनुप्रिया-छायावादोत्तर काल की प्रबन्ध-कृतियों में धर्मवीर भारती की 'कनुप्रिया' अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह पूर्ण मान्य रूप में नहीं, एक नये अर्थ में प्रबन्धकाव्य है। इसमें कवि का लक्ष्य कोई कथा कहना नहीं है। अपितु कृष्ण के साथ बिताए राधा के तन्मय क्षणों की विभिन्न स्थितियों को एकसूने में सुगंफित करना है। राधा ने कृष्ण के साहचर्य में जिन क्षणों को तन्मयता के साथ जिया था, वह उसका भोगा हुआ सत्य था उधार लिया हुआ नहीं। इसलिए उस सत्य के अतिरिक्त राधा को दूसरा कोई सत्य सार्थक नहीं दिखाई देता। कृष्ण दुनिया की दृष्टि में जब सम्राट और महान बन गए, तब भी राधा की दृष्टि में अपना वही सत्य समाया हुआ है। इस प्रकार इस प्रबन्धकाव्य की मूल संवेदना प्रेम है। कृष्ण का राजनयिक रूप और उसका युद्ध सत्य है अथवा राधा के साथ बीते प्रेम के तन्मय क्षण, यह 'कनुप्रिया' का प्रश्न है। इसका उत्तर ही है कि सम्भवत: प्रेम के क्षण ही सत्य हैं क्योंकि वे दुविधाहीन मन की उपज हैं जबकि युद्ध दुविधाग्रस्त हृदय से उपजता है। इस प्रकार अपनी गहन संवेदनशीलता और शिल्पगत ताजगी के कारण 'कनुप्रिया' एक सफल प्रबन्ध-रचना बन गई है।

अन्धा-युग- आधुनिक भावबोध की वाणी देने वाले प्रयासों में धर्मवीर भारती का 'अन्धा-युग' नामक गीत-नाट्य उल्लेखनीय है। इसमें महाभारत के 18वें दिन की संध्या से कृष्ण के देहावसान तक की कथा ली गई हैं। इस कथा के चयन का उद्देश्य युद्धजन्य प्रभावों का आकलन करना है। जब-जब युद्ध होगा, ऐसी ही अवसाद भरी त्रासद परिस्थितियाँ उत्पन्न होंगी, यह बताना कवि का अभीष्ट है। युद्ध के बाद भयावह संकटों के बादल मंडराते हैं, आस्था, अनास्था में बदल जाती है, मूल्य मूल्यहीनता में बदल जाते हैं। बहिर्द्वन्द्व की समाप्ति के बाद अन्तर्द्वन्द्व की विकराल ज्वाला जीभ लपलपाती हुई दौड़

पड़ती है। चारों ओर फैले, दिखाई देते हैं-निर्जीव खण्डित सत्य के शव और उनके बीज़ में उभरती हैं चीखें, पीड़ायें, और त्रासदियाँ। निःसन्देह 'अन्धा-युग' एक सशक्त त्रासदी है और इसमें तनावों का बड़ा प्रभावशाली चित्रण है। अश्वत्थामा के व्यथित हृदय से निकला 'आक्रोश', युयुत्सु की यातना, गांधारी का आवेश, धृतराष्ट्र की आत्मभर्त्सना और संजय की अभिशप्त चीख-सब मिलाकर एक ऐसे नाटकीय प्रभाव की सृष्टि करते हैं जिनमें पड़कर सहृदय का अन्तर ऊभ-चूभ करने लगता है। यही नहीं ? इस नीति नाट्य का शिल्पगत सौन्दर्य और बिम्बों की कलात्मकता भी दर्शनीय है। भाषा सशक्त, उतार-चढ़ाव से युक्त तथा लय से मण्डित है। 'अन्धा-युग' भारती की एक सफल उपलब्धि है। एक आलोचक ने भारती जी के सन्दर्भ में ठीक ही लिखा है-**"जीवन से निराश एवं विकृत मानव प्रवृत्तियों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करने, आधुनिक वैज्ञानिकता से भाराक्रान्त सभ्यता को चित्रित करने में भारती जी को अप्रत्याशित सफलता मिली है।"**

निश्चय ही भारती जी बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न अप्रतिम साहित्यकार थे।

भाषा-डॉ. धर्मवीर भारती की भाषा तें तत्सम और तद्भव शब्द प्रयुक्त हैं। बोल-चाल के शब्दों को काट-छांटकर भावपूर्ण बनाया गया है। कहीं-कहीं संस्कृत की सूक्तियों का भी प्रयोग हुआ है। अन्धा-युग में अश्वत्थामा द्वारा शिव स्तुति को उदाहरण के रूप में ...या जा सकता है। डॉ. भारती की काव्य-भाषा में लोकोक्तियों और मुहावरों का भी प्रयोग हुआ है। इससे भाषा में प्रवाहमयता और रोचकता आ गई है।

अलंकारों में उपमा और रूपक अलंकारों का सफल प्रयोग हुआ है। शब्दालंकारों का भी प्रयोग मिलता है।

बिम्ब-योजना और प्रतीकात्मकता- डॉ0 भारती के काव्य में भाव और वस्तु वर्णन के सजीव बिम्ब प्रस्तुत हुए हैं। **'अन्धा-युग'** गीति नाट्य पूर्ण रूप से प्रतीकात्मक है: युधिष्ठिर अर्द्ध-स्वरूप, अश्वत्थामा जागृत पशुत्व, धृतराष्ट्र अन्धी राजनीति, संजय निष्पृहता तथा गान्धारी जड़-मोह की प्रतीक है।

'**कनुप्रिया** में काव्यशास्त्रीय पौराणिक विभवमूलक और लोक-जीवन से सम्बन्धित अनेक प्रतीकों का प्रयोग हुआ है। ठंडा लोहा प्रेमजन्य कुंठा का प्रतीक है। 'चक्रव्यूह' वर्तमान के संघर्ष का प्रतीक है। 'टूटा पहिया' लघु मानव का प्रतीक है।

डा. भारती की कविताओं में उर्दू, फारसी और अंग्रेजी के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। उर्दू भी 'रुबाई', मुक्तक आदि परम्पराधन्थों का भी प्रयोग कवि ने किया है।

इस प्रकार हम देखते हैं धर्मवीर भारती के काव्य मे शिल्पगत सौन्दर्य है, बिम्बात्मकता है, गत्यात्मकता है तथा भाषा की सशक्तता और सजीवता है।

अद्यतन
हिन्दी काव्य

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय'

1. नदी के द्वीप
2. यह दीप अकेला
3. कलगी बाजरे की
4. बाबरा अहेरी
5. उड़ चल हारिल

1. नदी के द्वीप

(1)

हम नदी के द्वीप हैं
हम नहीं कहते कि हम को छोडकर स्रोतस्विनी बह जाय
वह हमें आकार देती है।
हमारे कोण, गलियाँ, अन्तरीप, उभार, सैकत-कूल,
सब गोलाइयाँ उसकी गढ़ी हैं।
माँ है वह। है, इसी से हम बने हैं।

(2)

किन्तु हम हैं द्वीप।
हम धारा नहीं हैं।
स्थिर समर्पण है हमारा। हम सदा से द्वीप हैं स्रोतस्विनी के।
किन्तु हम बहते नहीं हैं। क्योंकि बहना रेत होना है।
हम बहेंगे तो रहेंगे ही नहीं।
पैर उखड़ेंगे। प्लवन होगा। ढहेंगे। सहेंगे। बह जायेंगे।
और फिर हम चूर्ण होकर भी कभी क्या धार बन सकते?
रेत बनकर हम सलिल को तनिक गँदला ही करेंगे।
अनपयोगी ही बनायेंगे।

(3)

द्वीप हैं हम।
यह नहीं है शाप। यह अपनी नियति है।
हम नदी के पुत्र हैं। बैठे नदी के क्रोड़ में।
वह वृहद् भूखण्ड से हम को मिलाती है।
और वह भूखण्ड
अपना पितर है।

(4)

नदी, तुम बहती चलो।
भूखण्ड से जो दाय हमको मिला है, मिलता रहा है,
माँजती, संस्कार देती चलो :
यदि ऐसा कभी हो
तुम्हारे आल्हाद से या दूसरों के किसी स्वैराचार से—
अतिचार से—
तु बढ़ो, प्लावन तुम्हारा घरघराता उठे—
यह स्रोतस्विनी ही कर्मनाशा कीर्तिनाशा घोर
काल-प्रवाहिनी बन जाय
तो हमें स्वीकार है वह भी। उसी में रेत होकर
फिर छनेंगे हम। जमेंगे हम। कहीं फिर पैर टेकेंगे।
कहीं फिर भी खड़ा होगा नये व्यक्तित्त्व का आकार।
मातः, उसे फिर संस्कार तुम देना।

2. यह दीप अकेला

यह दीप अकेला स्नेहभरा
है गर्वभरा, मदमाता, पर
इसको भी पंक्ति को दे दो।
यह जन है : गाता गीत जिन्हें फिर और कौन गायेगा?
पनडुब्बा : ये मोती सच्चे फिर कौन कृती लायेगा?
यह समिधा : ऐसी आग हठीला बिरला सुलगायेगा।
यह अद्वितीय : यह मेरा : यह मैं स्वयं विसर्जित :
यह दीप, अकेला, स्नेहभरा,
है गर्वभरा मदमाता, पर
इसको भी पंक्ति को दे दो।

यह मधु है : स्वयं काल की मौना का युग-संचय,
यह गोरस : जीवन-कामधेनु का अमृत-पूत पय,
यह अंकुर : फोड़ धरा को रवि को तकता निर्भय,
यह प्रकृत, स्वयम्भू, ब्रह्मअयुत:
इसको भी शक्ति को दे दो।
यह दीप, अकेला, स्नेहभरा,
है गर्वभरा मदमाता, पर
इसको भी पंक्ति को दे दो।
यह वह विश्वास, नहीं जो अपनी लघुता में भी काँपा,
वह पीड़ा, जिसकी गहराई को स्वयं उसी ने नापा;
कुत्सा, अपमान, अवज्ञा के धुँधुआते कड़वे तम में
यह सदा-द्रवित, चिर-जागरुक, अनुरक्त-नेत्र,
उल्लम्ब-बाहु, यह चिर-अखंड अपनापा।
जिज्ञासु, प्रबुद्ध, सदा श्रद्धामय
इसको भी भक्ति को दे दो :
यह दीप, अकेला, स्नेहभरा
है गर्वभरा मदमाता, पर
इसको भी पंक्ति को दे दो।

3. कलगी बाजरे की

हरी बिछली घास।
दोलती कलगी छरहरी बाजरे की।
अगर मैं तुमको
ललाती साँझ के नभ की अकेली तारिका
अब नहीं कहता,
या शरद् के भोर की नीहार-न्हायी कुँई
टटकी कली चम्पे की
वगैरह, तो
नहीं कारण कि मेरा हृदय उथला या कि सूना है
या कि मेरा प्यार मैला है।
बल्कि केवल यही :
ये उपमान मैले हो गये हैं।
देवता इन प्रतीकों के कर गये हैं कूच।
कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है।

मगर क्या तुम
नहीं पहचान पाओगी :
तुम्हारे रूप के–
तुम हो, निकट हो, इसी जादू के–
निजी किस सहज, गहरे बोध से,
किस प्यार से मैं कह रहा हूँ–
अगर मैं यह कहूँ–
बिछ्ली घास हो तुम
लहलहाती हवा में कलगी छरहरी बाजरे की ?
आज हम शहरातियों को
पालतू मालंच पर सँवरी जुही के फूल से
सृष्टि के विस्तार का–ऐश्वर्य का–
औदार्य का–
कहीं सच्चा, कहीं प्यारा
एक प्रतीक
बिछ्ली घास है,
या शरद् की साँझ के सूने गगन की पीठिका पर
दोलती कलगी अकेली बाजरे की।
और सचमुच, इन्हें जब-जब देखता हूँ
यह खुला वीरान संसृति का घना हो सिमट आता है–
और मैं एकान्त होता हूँ
समर्पित।
शब्द जादू हैं–
मगर क्या यह समर्पण कुछ नहीं है?

4. बावरा अहेरी

भोर का बावरा अहेरी
पहले बिछाता है आलोक की
लाल-लाल कनियाँ
पर जब खींचता है जाल को
बांध लेता है सभी को साथ
छोटी-छोटी चिड़ियाँ
मँझोले परेवे
बड़े-बड़े पंखी

डैनों वाले, डील वाले
डौल के बेडौल
उड़ने जहाज
कलस-तिसूल वाले मन्दिर-शिखर से ले
तारघर की नाटी मोटी चिपटी गोल घुस्सों वाली
उपयोग-सुन्दरी -
वेपनाह काया को:
गोधूली की धूल को, मोटरों के धुयें को भी
पार्क के किनारे पुष्पिताग्र कर्णिकार की आलोक-
खची तन्वि रूप-रेखा को
और दूर कचरा जलाने वाले कल की उद्दडं
चिमनियों को, जो
धुआँ यों उगलती है, मानो उसी मात्र से
अहेरी को हरा देगी!
बावरे अहेरी रे!
कुछ भी अवध्य नहीं तुझे, सब आखेट है:
एक बस मेरे मन-विवर में दुबकी कलौंस को
दुवकी ही छोड़कर क्या तू चला जाएगा?
ले, मैं खोल देता हूँ कपाट सारे
मेरे इस खंडहर की शिरा-शिरा छेद दे
आलोक की अनी से अपनी,
गढ़ सारा ढाह कर ढूह भर कर दे:
विफल दिनों की तू कलौंस पर माँज जा
मेरी आँखें आँज जा
कि तुझे देखूँ
देखूँ, और मन में कृतज्ञता उमड़ आये
पहनूँ सिरोपे-से ये कनक तार तेरे
बावरे अहेरी रे!

(बावरा—अहेरी)

5. उड़ चल, हारिल

उड़ चल हारिल, लिये हाथ में
यही अकेला ओछा तिनका-
ऊषा जाग उठी प्राची में
कैसी बाट भरोसा किन का!

शक्ति रहे तेरे हाथों में-
छूट न जाय यह चाह सृजन की;
शक्ति रहे तेरे हाथों में-
रुक न जाय यह गति जीवन की

ऊपर-ऊपर-ऊपर-ऊपर-
बढ़ा चीरता चल दिङ्मंडलः
अनथक पंखों की चोटों से
नभ में एक मचा दे हलचलः

तिनका ? तेरे हाथों में है।
अमर एक रचना का साधन
तिनका ? तेरे पंजे में है
विधना के प्राणों का स्पन्दन!

काँप न यद्यपि दसों दिशा में
तुझे शून्य नभ घेर रहा है,
रुक न, यदपि उपहास जगत् का
तुझको पथ से हेर रहा है;

तू मिट्टी का किन्तु आज
मिट्टी को तूने बाँध लिया है,
तू था सृष्टि, किन्तु सृष्टा का
गुर तूने पहचान लिया है !

मिट्टी निश्चय है यथार्थ, पर
क्या जीवन केवल मिट्टी है
तू मिट्टी, पर मिट्टी से उठने
की इच्छा किसने दी है!

आज उसी ऊर्ध्वंग ज्वाल का
तू है दुर्निवार हरकारा
दृढ़ ध्वज-दंड बना यह तिनका
सूने पथ का एक सहारा!

मिट्टी से जो छीन लिया है
वह तज देना धर्म नहीं है,
जीवन साधन की अवहेलना
कर्मवीर का कर्म नहीं है!

तिनका पथ की धूल स्वयं तू
है अनन्त की पावन धूली
किन्तु आज तूने नभ-पथ में
क्षण में बद्ध अमरता छू ली!

ऊषा जाग उठी प्राची में-
आवाहन यह नूतन दिन का:
उड़ चल, हारिल लिये हाथ में
एक अकेला पावन तिनका!

●●

गजानन माधव 'मुक्तिबोध'

1. मुझे क़दम-क़दम पर
2. गुँथे तुमसे, बिंधे तुमसे
3. रात चलते हैं अकेले ही सितारे
4. मृत्यु और कवि
5. पूँजीवादी समाज के प्रति

1. मुझे क़दम-क़दम पर

मुझे क़दम-क़दम पर
चौराहे मिलते हैं
बाँहें फैलाये !!
एक पैर रखता हूँ
कि सौ राहें फूटतीं,
व मैं उन सब पर गुज़रना चाहता हूँ,
बहुत अच्छे लगते हैं
उनके तजुर्बे और अपने सपने..........
सब सच्चे लगते हैं,
अजीब-सी अकुलाहट दिल में उभरती है,
मैं कुछ गहरे में उतरना चाहता हूँ;
जाने क्या मिल जाये !!

मुझे भ्रम होता है कि प्रत्येक पत्थर में
चमकता हीरा है,
हर-एक छाती में आत्मा अधीरा है,
प्रत्येक सुस्मित में विमल सदानीरा है,
मुझे भ्रम होता है कि प्रत्येक वाणी में
महाकाव्य-पीड़ा है,

पल भर में सबमें से गुजरना चाहता हूँ,
प्रत्येक उर में से तिर आना चाहता हूँ,
इस तरह खुद ही को दिये-दिये फिरता हूँ,
अजीब है जिन्दगी !!
बेवकूफ बनने के खातिर ही
सब तरफ़ अपने को लिये-लिये फिरता हूँ,
और यह देख-देख बड़ा मज़ा आता है
कि मैं ठगा जाता हूँ.................
हृदय में मेरे ही,
प्रसन्न-चित्त एक मूर्ख बैठा है
हँस-हँसकर अश्रुपूर्ण, मत्त हुआ जाता है,
कि जगत्....... स्वायत्त हुआ जाता है।

कहानियाँ लेकर और
मुझको कुछ देकर ये चौराहे फैलते
जहाँ जरा खड़े होकर
बातें कुछ करता हूँ........
.... उपन्यास मिल जाते।

दुःख की कथाएँ, तरह-तरह की शिकायतें
अहंकार-विश्लेषण, चारित्रिक आख्यान,
जमाने के जानदार सूरें व आयतें
सुनने को मिलती हैं।

कविताएँ मुसकरा लाग-डाँट करती हैं
प्यार बात करती हैं।
मरने और जीने की जलती हुई सीढ़ियाँ
श्रद्धाएँ चढ़ती हैं !!

घबराये प्रतीक और मुसकाते रूप-चित्र—
लेकर मैं घर पर जब लौटता........
उपमाएँ, द्वार पर आते ही कहती हैं कि
सौ बरस और तुम्हें
जीना ही चाहिए।

घर पर भी, पग-पग पर चौराहे मिलते हैं,
बाँहें फैलाये रोज़ मिलती हैं सौ राहें,
शाखा-प्रशाखाएँ निकलती रहती हैं,

नव-नवीन रूप-दृश्य वाले सौ-सौ विषय
रोज़-रोज़ मिलते हैं........
और, मैं सोच रहा कि
जीवन में आज के
लेखक की कठिनाई यह नहीं कि
कमी है विषयों की
वरन् यह कि आधिक्य उनका ही
उसको सताता है,
और, वह ठीक चुनाव कर नहीं पाता है !!

2. गुँथे तुमसे, बिंधे तुमसे

वेदना में हम विचारों की
गुँथे तुमसे,
बिंधे तुमसे,
व आवेष्टित परस्पर हो गये
कर्मण्य-क्षिप्रा-तीर पर !!
..... कोई नहीं थे हम तुम्हारे किन्तु
सहचर हो गये
चाहे जलधि, पर्वत, हजारों मील की दूरी
हमारे बीच में आ जाय,
फिर भी मानसिक अदृश्य सूत्रों से
हमारी आत्माएँ परस्पर बात करती हैं
विचारों के स्वयं-संवेदनात्मक तन्तुमूलों ने
गहन मस्तिष्क-कोशों में
हृदय के रुधिर-कोशों में
अनेकों सूक्ष्मतम जाले पसारे हैं
व अन्तर्व्यक्ति की रमणीय
ऊँची वृक्ष-शाखों पर
मनोहर फूल विकसित कर दिये ....!
जीवन-जगत् उनकी महक में डूबता !!
अन्तःकरण के मेह-कुहरे के घने अँधियार में
अब तक छिपा था जो

धवल कैलाश
उद्घाटित हुआ सहसा
किरण, बर्फ व रंग-बिरंगे फूल से आवृत
गहन रमणीय व अस्तित्व
सारी मानवी सम्भावनाओं का स्वयं-चैतन्य
गहरी आन्तरिक सम्पन्नताओं का
धवल कैलाश
सामान्यीकरण का वह असामान्यीकरण
अनुभूत सत्यों का समन्वित संगठित हिम-शिखर
उसके शिला-प्रस्तर से
सहस्रों झर रहे रमणीय
शत-निष्कर्ष !
शत-निर्झर !!
अन्तर-भार-नम्रा देवदारु डाल के नीचे
झुके हम और अंजलि भर
लगे पीने
तुम्हारे साथ
उसे झरते हुए जल-रूप
द्युति-निष्कर्ष को
कि इतने में गहन गम्भीर, नीली घन-घटाओं की
नभोभेदी चमकती गड़गड़ाहट-सी हुई
अन्तर्गुहाएँ खोल मुँह चिल्ला उठीं
कहने लगीं—
पी रहे हो तुम हमारा सत्
पी रहे हो गति
पी रहे हो चित्
निष्कर्ष-निर्झर-लहर
प्राकृत, वन्य और असभ्य है
वह मान्य ड्राइंग-रूम संस्कृति से तुम्हें हटवायेगी
वह कान पकड़ेगी, उठाकर फेंक देगी
अजनबी मैदान में
घर-बार सब छुड़वायेगी।

तुमको अजाने देश में
गिरि-कन्दरा में जंगलों में सब जगह
भटकायेगी।
अजनबी स्थिति या परिस्थिति में तुम्हें
सम्पन्न कर देगी
अतः आदेश उसके मान
यदि तुम निकल जाओ
वह जहाँ भी जाय
वह जहाँ ले जाय
तो तुम पाओगे अभिप्रेत
संकट-कष्ट की चट्टान के भीतर फँसा हीरा
निकल, दमकायेगा चेहरा तुम्हारा श्याम
किन्तु, यदि माना नहीं आदेश
स्वयं निष्कर्ष तुमको रगड़ देंगे
नष्ट कर देंगे
जहाँ रुक जाओगे।

तै नहीं आधे किये जाते रास्ते
इस रास्ते पर धरमशाला डाकबँगला भी नहीं है
सत्य को अनुभूत करना सहज है
मुश्किल बहुत
उसके कठिन निष्कर्ष-मार्गों पर चले चलना
इसलिए इस अमृत निर्झर-लहर-जल को
और भी पी लो।
हाँ, सुनो ....
यदि व्यक्ति अथवा स्थिति
की जब-जब बेरुखी दीखे
सहज चलते चलो
सुन लो कि वे वीरान टीले हैं
व टीलों की कभी करना उपेक्षा मत
परस्पर-संवद्य आवेष्टित दशा में

शब्दशः

सुनते रहे हम गरज भीतर
व उसकी हर धड़क
कुछ हुए आतंकित
अतः कुछ भीति !!
पर, निष्कर्ष-निर्झर-लहर-जल में
काँपता था पूर्ण-मानव-चन्द्र
भर उठीं थीं पुतलियों में चन्द्र-कनियाँ !!
पी रहे थे उस समय हम चन्द्र-जल-धारा,
अतः थी भीति भी तो हो उठी मीठी
गहन आतंक हमको बुलाता-सा था !!
विचारों की शिराओं में
स्वयं उद्देश्य-संवदेन (कमल के रक्त-सा) अकुला
हृदय में रक्त-कमल-विकास करता था।
गहन परिवर्तनों के लक्ष्य का
मन का जगत् का विश्व का
मानव-प्रदेशों का सतत्
सुकुमार अनुसंधान-पथ हमको दिखाता जायेगा
सम्मोह का दीपक
विवेकी अनुभवों के हाथ में जो किरण-तत्पर है
यह हमें विश्वास था।
लहर-जल पीकर
लगा कुछ यों कि कन्धों पर
स्वयं के चढ़ रहे हम स्वयं
यों ऊँचे उठे तो देखते क्या हैं
कि सारा विश्व-दृश्य बदल गया
या अन्तरात्मा ही बदलती जा रही।
बदली हुई उस अन्तरात्मा का
अर, वह नव-विवाहित भाव-संवेदन
कि गहरी वेदना का संवहन-दायित्व
हमको ले चला निष्कर्ष-पथ पर और
लघु व्यक्तित्व के भीतर

लहरते क्षीण पोखर में
विराजित हो गया था सूर्य-मुखमण्डल
विचारों के चरण में
संचरण में
आचरण और विचरण में
गहन तेजस् व ओजस् ।
और ऊर्जा है
हमेशा खून ताज़ा है !!
वह ज्यामितिक रेखा
नभस् के पार जाती झलमलाती-सी दिखी
उत्साह के तारुण्य में
गणितिक हुआ अनुवाद अन्तर का
हमारे शून्य में ऋण-राशि को निःसीम कर डाला
चलत् संसार के सिद्धान्त पर हम क्रुद्ध थे
ऋण-धन-परे गणितिक पथों पर चल पड़े
हम प्रथम विद्रोही जमाने से लड़े
नक्षत्र-पुष्पों से दमकने ये लगे
उलझे हुए त्रैराशिकों के आँकड़े
जब-जब कहा
तब-तब ग्रहण लगने लगा
इस सूर्य को उस चन्द्र को !!

3. रात, चलते हैं अकेले ही सितारे

रात, चलते हैं अकेले ही सितारे।
एक निर्जन रिक्त नाले पास
मैंने एक स्थल को खोद
मिट्टी के हरे ढेले निकाले दूर
खोदा और
खोदा और
दोनों हाथ चलते जा रहे थे शक्ति से भरपूर !
सुनाई दे रहे थे स्वर-

बडे अपस्वर
घृणित रात्रिचरों के क्रूर।
काले से सुरों में बोलता, सुनसान था मैदान!
जलती थी हमारी लालटैन उदास,
एक निर्जन, रिक्त नाले पास
खुद चुका बिस्तर बहुत गहरा
न देखा खोलकर चेहरा
कि जो अपने हृदय-सा,
प्यार का टुकड़ा
हमारी जिंदगी का एक टुकड़ा,
प्राण का परिचय,
हमारी आँख-सा अपना
वही चेहरा जरा सिकुड़ा
पड़ा था पीत,
अपनी मृत्यु में अविभीत !
वह निर्जीव,
पर उस पर हमारे प्राण का अधिकार;
यहाँ भी मोह है अनिवार,
यहाँ भी स्नेह का अधिकार;
फिर मिट्टी कि फिर मिट्टी,
बिस्तर खूब गहरा खोद,
अपनी गोद से,
रक्खा उसे उस नरम धरती-गोद
फिर मिट्टी, कि फिर मिट्टी,
रखे फिर एक-दो पत्थर
उढ़ा दी मृतिका की साँवली चादर
हम चल पड़े
लेकिन बहुत ही फिक्र से फिर कर,
कि पीछे देखकर
मन कर लिया था शांत
अपना धैर्य पृथ्वी के हृदय में रख दिया था।

धैर्य पृथ्वी का हृदय में रख लिया था।
उतनी भूमि पर है चिरंतन अधिकार मेरा,
जिसकी गोद में मैंने सुलाया प्यार मेरा।
आगे लालटैन उदास,
पीछे, दो हमारे पास साथी।
केवल पैर की ध्वनि के सहारे
राह चलती जा रही थी।

4. मृत्यु और कवि

घनी रात, बादल रिमझिम हैं, दिशा मूक, निस्तब्ध वनान्तर,
व्यापक अन्धकार में सिकुड़ी सोयी नर की बस्ती, भयंकर
है निस्तब्ध गगन, रोती-सी सरिता-धार चली घहराती,
जीवन-लीला को समाप्त कर मरण-सेज पर है कोई नर।
बहुत संकुचित छोटा घर है, दीपालोकित फिर भी धुँधला,
वधू मूर्च्छिता, पिता अर्द्ध-मृत, दुखिता माता स्पन्दनहीना।
घनी रात बादल रिमझिम हैं, दिशा मूक, कवि का मन गीला।
'यह सब क्षणिक, क्षणिक जीवन है, मानव-जीवन है क्षणभंगुर',
ऐसा मत कह मेरे कवि, इस क्षण संवेदन से हो आतुर
जीवन-चिन्तन में निर्णय पर अकस्मात् मत आ, ओ निर्मल।
इस वीभत्स प्रसंग में रहो तुम अत्यन्त स्वतन्त्र निराकुल,
भ्रष्ट न होने दो युग-युग की सतत साधना महाराधना,
इस क्षणभर के दुःख-भार से, रहो अविचलित, रहो अचंचल।
अन्तर्दीपक के प्रकाश में विनत-प्रणत आत्मस्थ रहो तुम,
जीवन के इस गहन अतल के लिए मृत्यु का अर्थ कहो तुम,
क्षणभंगुरता के इस क्षण में जीवन की गति, जीवन का स्वर,
दो सौ वर्ष आयु यदि होती तो क्या अधिक सुखी होता नर ?
इसी अमर धारा के आगे बहने के हित यह सब नश्वर,
सृजनशील जीवन के स्वर में गाओ मरण-गीत तुम सुन्दर।
तुम कवि हो, ये फैल चले मृदु गीत निबल मानव के घर-घर
ज्योतित हों मुख नव आशा से, जीवन की गति, जीवन का स्वर !

5. पूँजीवादी समाज के प्रति

इतने प्राण, इतने हाथ; इतनी बुद्धि
इतना ज्ञान, संस्कृति और अंत:शुद्धि
इतना दिव्य, इतना भव्य, इतनी शक्ति
यह सौंदर्य, वह वैचित्रय, ईश्वर-भक्ति,
इतना काव्य, इतने शब्द, इतने छन्द-
जितना ढोंग, जितना भोग है निर्बंध
इतना गूढ़, इतना गाढ़, सुन्दर जाल-
केवल एक जलता सत्य देने टाल।
छोड़ों हाय, केवल घृणा और दुर्गंध
तेरी रेशमी वह शब्द-संस्कृति अंध
देती क्रोध मुझको, खूब जलता क्रोध
तेरे रक्त में भी सत्य का अवरोध
तेरे रक्त से भी घृणा आती तीव्र
तुझको देख मितली उमड आती शीघ्र
तेरे हास में भी रोग-कृमि हैं उग्र
तेरे नाश तुझ पर क्रुद्ध, तुझ पर व्यग्र।
मेरी ज्वाल, जन की ज्वाल होकर एक
अपनी उष्णता से धो चलें अविवेक
तू है मरण, तू है रिक्त, तू है व्यर्थ
तेरा ध्वंस केवल एक तेरा अर्थ!

वैद्यनाथ मिश्र 'नागार्जुन'

1. गुलाबी चूड़ियाँ

प्राइवेट बस का ड्राइवर है तो क्या हुआ,
सात साल की बच्ची का पिता तो है!
सामने गियर से ऊपर
हुक से लटकी रक्खी है
काँच की चार चुड़ियाँ गुलाबी
बस की रफ्तार के मुताबिक
हिलती रहती है
झुक कर मैंने पूछ लिया
खा गया मानो झटका
अधेड़ उम्र का मुच्छड़ रोबीला चेहरा
आहिस्ते से बोला : हां सा'ब
लाख कहता हूँ, नहीं मानती है मुनिया
टाँगे हुये है कई दिनों से
अपनी अमानत
यहाँ अब्बा की नजरों के सामने
मैं भी सोचता हूँ
क्या बिगाड़ती हैं चूड़ियाँ
किस जुर्म पे हटा दूँ इनको यहाँ से ?
और ड्राइवर ने एक नज़र मुझे देखा

और मैंने एक नज़र उसे देखा
छलक रह था दूधिया वात्सल्य बड़ी-बड़ी आँखों में
तरलता हावी थी सीधे-सादे प्रश्न पर
और अब वे निगाहें फिर से हो गई सड़क की ओर
ओर मैंने झुककर कहा-
हाँ भाई, मैं भी पिता हूँ
वो तो बस यूँ ही पूछ लिया आपसे
वर्ना ये किसको नहीं भाएंगी ?
नन्हीं कलाइयों की गुलाबी चूड़ियाँ!

2. सिन्दूर-तिलकित भाल

घोर निर्जन में परिस्थिति ने दिया है डाल!
याद आता तुम्हारा सिन्दूर तिलकित भाल!
कौन है वह व्यक्ति, जिसको चाहिए न समाज ?
कौन है वह एक जिसको नहीं पड़ता दूसरे से काज ?
चाहिए किसको नहीं सहयोग ?
चाहिए किसको नहीं सहवास ?
कौन चाहेगा कि उसका शून्य में टकराय यह उच्छ्वास ?
हो गया हूँ मैं नहीं पाषाण
जिसको डाल दे कोई कहीं भी
करेगा वह कभी कुछ न विरोध
करेगा वह कुछ नहीं अनुरोध
वेदना ही नहीं उसके पास
फिर उठेगा कहाँ से निःश्वास
मैं न साधारण, सचेतन जन्तु
यहाँ हाँ-ना-किन्तु और परन्तु
यहाँ हर्ष-विषाद-चिन्ता-क्रोध
यहाँ है सुख-दुःख का अवबोध
यहाँ है प्रत्यक्ष औ अनुमान
यहाँ स्मृति-विस्मृति के सभी के स्थान
तभी तो तुम याद आतीं प्राण
हो गया हूँ मैं नहीं पाषाण!
याद आते स्वजन
जिनकी स्नेह से भीगी अमृतमय आँख

स्मृति-विहंगम की कभी थकने न देगी पाँख
याद आता मुझे अपना वह 'तरउनी' ग्राम
याद आतीं लीचियाँ, वे आम
याद आते मुझे मिथिला के रुचिर भू-भाग
याद आते धान
याद आते कमल, कुमुदिनि और तालमखान
याद आते शस्य-श्यामल जनपदों के
रूप-गुण-अनुसार ही रक्खे गये वे नाम
याद आते वेणुवन, वे नीलिमा के निलय, अति अभिराम
धन्य वे जिनके मृदुलतम अंक
हुए थे मेरे लिए पर्यंक
धन्य वे जिनकी उपज के भाग
अन्न-पानी और भाजी-साग
फूल-फल औ' कन्द-मूल, अनेकविध मधु-मांस
विपुल उनका ऋण, सधा सकता न मैं दशमांश
ओह, यद्यपि पड़ गया हूँ दूर उनसे आज—
हृदय से पर आ रही आवाज—
धन्य वे जन, धन्य वही समाज
यहाँ भी तो हूँ न मैं असहाय
यहाँ भी हैं व्यक्ति औ' समुदाय
किन्तु जीवनभर रहूँ फिर भी प्रवासी ही कहेंगे हाय!
मरूँगा तो चिता पर दो फूल देंगे डाल
समय चलता जायगा निर्बाध अपनी चाल
सुनोगी तुम तो उठेगी हूक
मैं रहूँगा सामने (तसवीर में) पर मूक
सान्ध्य नभ में पश्चिमान्त-समान
लालिमा का जब करुण आख्यान
सुना करता हूँ सुमुखि उस काल
याद आता तुम्हारा सिन्दूर-तिलकित भाल।

3. बादल को घिरते देखा है

अमल धवल गिरि के शिखरों पर,
बादल को घिरते देखा है।
छोटे-छोटे मोती जैसे

उसके शीतल तुहिन कणों को,
मानसरोवर के उन स्वर्णिम
कमलों पर गिरते देखा है,
बादल को घिरते देखा है।
तुंग हिमालय के कन्धों पर
छोटी-बड़ी कई झीलें हैं,
उनके श्यामल नील सलिल में
समतल देशों से आ-आकर
पावस की ऊमस से आकुल
तिक्त-मधुर बिसतन्तु खोजते
हंसों को तिरते देखा है,
बादल को घिरते देखा है।

ऋतु बसन्त का सुप्रभात था
मंद-मंद था अनिल बह रहा,
बालारुण की मृदु किरणें थीं
अगल-बगल स्वर्णाभ शिखर थे
एक-दूसरे से विरहित हो
अलग-अलग रहकर ही जिनको
सारी रात बितानी होती,
निशाकाल से चिर-अभिशापित
बेबस उस चकवा-चकई का
बन्द हुआ क्रन्दन, फिर उनमें
उस महान् सरवर के तीरे
शैवालों की हरी दरी पर
प्रणय-कलह छिड़ते देखा है
बादल को घिरते देखा है।

दुर्गम बर्फानी घाटी में
शत-सहस्र फुट ऊँचाई पर
अलख नाभि से उठने वाले
निज के ही उन्मादक परिमल
के पीछे धावित हो-हो कर
तरल तरुण कस्तूरी मृग को
अपने पर चिढ़ते देखा है,
बादल को घिरते देखा है।

कहाँ गया धनपति कुबेर वह
कहाँ गयी उसकी वह अलका ?
नहीं ठिकाना कालिदास के
व्योम-प्रवाही गंगाजल का,
ढूँढ़ा बहुत परन्तु लगा क्या
मेघदूत का पता कहीं पर,
कौन बताये वह छायामय
बरस पड़ा होगा न यहीं पर,
जाने दो, वह कवि-कल्पित था,
मैंने तो भीषण जाड़ों में
नभ-चुम्बी कैलाश-शीर्ष पर
महामेघ को झंझानिल से
गरज-गरज भिड़ते देखा है,
बादल को घिरते देखा है।

शत-शत निर्झर-निर्झरिणी कल
मुखरित देवदारु कानन में,
शोणित-धवल भोज-पत्रों से
छाई हुई कुटी के भीतर,
रंग-बिरंगे और सुगन्धित
फूलों से कुन्तल को साजे,
इन्द्रनील की माला डाले
शंख-सरीखे सुघड़ गलों में,
कानों में कुवलय लटकाये,
शतदल लाल कमल वेणी में,
रजत-रजित मणि-खचित कलामय
पान-पात्र द्राक्षासव-पूरित
रखे सामने अपने-अपने
लोहित चन्दन की त्रिपदी पर,
नरम निदाग बाल-कस्तूरी
मृगछलों पर पलथी मारे
मदिरारुण आँखों वाले उन
उन्मद किन्नर-किन्नरियों की
मृदुल मनोरम अँगुलियों को
वंशी पर फिरते देखा है,
बादल को घिरते देखा है।

4. अकाल और उसके बाद

कई दिनों तक चूल्हा रोया चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया सोयी उसके पास
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त

दाने आये घर के अन्दर कई दिनों के बाद
धुआँ उठा आँगन से ऊपर कई दिनों के बाद
चमक उठीं घर-भर की आँखें कई दिनों के बाद
कौए ने खुजलाई पाँखें कई दिनों के बाद।

5. मेरी भी आभा है इसमें

नये गगन में नया सूर्य जो चमक रहा है
यह विशाल भूखंड आज जो दमक रहा है
मेरी भी आभा है इसमें
भीनी भीनी खुशबूवाले
रंग-बिरंगे
यह जो इतने फूल खिले हैं
कल इनको मेरे प्राणों ने नहलाया था
कल इनको मेरे सपनों ने सहलाया था
पकी सुनहली फसलों से जो
अबकी यह खलिहान भर गया
मेरी रग-रग के शोणित की बूँदें इसमें मुसकाती हैं
नये गगन में नया सूर्य जो चमक रहा है
यह विशाल भूखण्ड आज जो दमक रहा है
मेरी भी आभा है इसमें।

शमशेरबहादुर सिंह

1. भाषा
2. बात बोलेगी
3. उषा
4. एक पीली शाम
5. लौट आ, ओ धार

1. भाषा

भाषाओं की नस-नस एक-दूसरे से गुँथी हुई है
(मगर उलझी हुई नहीं)
हमारी साँस-साँस में उनका सौन्दर्य है
(मॉ ड र्निस् टिक्) कहो मत
अभी हमें लड़ने दो।
यह स्टेज महान्
मूर्खों के लिए है
आह यह आधुनिक स्टेज
परिस्थितियाँ हीरो हैं
और यांत्रिक राजनीति हीरोइनें
जितने ही भाषा प्रदेश और देश उतने ही अंक है
इस नाटक के!
ओह
विदेशी मनीषी!
तुम्हारी पूँजी हमने मोल ली है
अपने भविष्य की माया से
चक्षु दृष्टि ज्ञान ध्यान : अक्षर-
अक्षर में हमारी व्युत्पत्ति का विज्ञान।

—हम तो हैं धर्मक्षेत्र
तुम्ही संजय : स्थिर संज्ञायुक्त
हमारे इतिहासकार ओ विदेशी मनीषी !
हमारी भाषाओं से प्रेम मनुष्योत्तर है
तुम्हारा मानव-प्रेम भाषाओं के भेद-भेद जाता है
हम 'एक' ही हैं : 'दूसरा' जो भी है, नहीं है—
अर्थात् असत् है : उसे नहीं ही होना चाहिए।
हमारे द्वारा उसकी समाप्ति है।
एकोऽहम्-एकोऽहम्.....
हमें कोई जीत नहीं सकता तर्क से : हम तर्क से परे
एक अनादि धर्मक्षेत्र के कृष्ण हैं।
इस नाटक के लिए
आधुनिकतम निर्देशक अमरीका से बुलाओ
और फ्रान्स से। और जापान से
तभी हम खिलेंगे और रक्त के समान उज्ज्वल
हमारी भाषाओं का तिलक होगा !!
(घोषणा)
हम एक हैं !!
मगर कहाँ ! मगर कहाँ ! मगर कहाँ ! मगर कहाँ ....!
यह आध्यात्मिक प्रश्न
हमें लहू-लुहान कर रहा है!
जर्मन और अमरीकी और फ्रांसीसी और फिरंगी और रूसी
और समस्त यूरोपीय प्राच्यविद्याविद्
हमारा अगम ज्ञान-सागर मंथर कर रहे हैं.....
और हम होली खेल रहे हैं
और हम स्वयं अहा स्वयं दानव स्वयं देव
इसी सागर में होली खेल रहे हैं!
आओ हम पर धूल फेंको गहरी कीचड़ फेंको !
हमारे शेषनाग हमारे काल पर!
हमारे रंगीन भ्रूणों से हमारी आधुनिक सभ्यता का
इतिहास लिखो
आओ, एटामिक वन्दनवार दिशाओं-दिशाओं सजाने वालों,
आओ !
हमारी अमर आत्मा तुम पर निछावर है कब से!
जब नयी सृष्टि जन्मेगी जो जन्मेजय
नये ज्ञान-पुराण के साथ—
हम अखिल के प्रति जिज्ञासु उल्लसित मोहित

और उसके प्रत्येक शब्द स्वर बोल ताल
और तान और तरंग से भरे
सहज ही आनन्दित होंगे
अभी वह बहुत दूर की बात है....!
अभी हमारे मुँह में झाग हैं आँखों में क्रोध और दम्भ और
एकांगी विद्वता की कठोर लालिमा!
अभी हम बात-बात पर दाँत दिखाते हैं देखो हम कैसे
हुमसते हैं बार-बार
—सभी शब्द हमारे हमारे ही कोश में है
एक प्यार के वास्तविक शब्द को छोड़कर!
हमारा गर्व एक-दूसरे को पीस रहा है हम मात्र जबड़े हैं
अत्यन्त शक्तिशाली जबड़े हम सभी।
पशु-गर्व हमें देखकर कुछ सीखे तो सीखे।
हमारी कलाएँ अत्याधुनिक हैं, संगीन और सुष्ठु,
वैज्ञानिक अनुभूतियों की निर्मम पराकाष्ठा पर
ओ संजय ! ओ संजय !!
ओ हमारे आने वाले वैशम्पायन !!!

2. बात बोलेगी

बात बोलेगी,
हम नहीं।
भेद खोलेगी
बात ही।
सत्य का मुख
झूँठ की आँहें
क्या—देखें!
सत्य का रुख
समय का रुख है :
अभय जनता को
सत्य ही सुख है,
सत्य ही सुख।
दैन्य दानव; काल
भीषण; क्रूर
स्थिति; कंगाल
बुद्धि; घर मजूर।

सत्य का

क्या रंग ?–

पूछो

एक संग।

एक–जनता का

दुःख : एक।

हवा में उड़ती पताकाएँ

अनेक।

दैन्य दानव। क्रूर स्थिति।

कंगाल बुद्धि : मजूर घर–भर।

एक जनता का–अमर वर :

एकता का स्वर

अन्यथा स्वातन्त्र्य–इति।

3. उषा

प्रात नभ था बहुत नीला शंख जैसे

भोर का नभ

राख से लीपा हुआ चौका

(अभी गीला पड़ा है)

बहुत काली सिल जरा-से लाल केसर से

कि जैसे धुल गयी हो

स्लेट पर या लाल खड़िया चाक

मल दी हो किसी ने

नील जल में या किसी की

गौर झिलमिल देह

जैसे हिल रही हो।

और..............

जादू टूटता है इस उषा का अब

सूर्योदय हो रहा है।

4. एक पीली शाम

एक पीली शाम
पतझर का जरा अटका हुआ पत्ता
शान्त
मेरी भावनाओं में तुम्हारा मुखकमल
कृश म्लान हारा-सा
(कि मैं हूँ वह
मौन दर्पण में तुम्हारे कही ?)
वासना डूबी
शिथिल पल में
स्नेह काजल में
लिये अद्‌भुत रूप-कोमलता

अब गिरा अब गिरा वह अटका हुआ आँसू
सान्ध्य तारक-सा
अतल में।

5. लौट आ, ओ धार

लौट आ ओ धार
टूट मत ओ साँझ के पत्थर
हृदय पर
(मैं समय की एक लम्बी आह
मौन लम्बी आह)
लौट आ, ओ फूल की पंखड़ी
फिर
फूल में लग जा
चूमता है धूल का फूल
कोई हाय।

●●

भवानीप्रसाद मिश्र

1. गीतफ़रोश
2. सन्नाटा
3. फूल कमल के
4. सतपुड़ा के जंगल
5. स्नेह शपथ

1. गीतफ़रोश

जी हाँ हुजूर, मैं गीत बेचता हूँ,
मैं तरह-तरह के
गीत बेचता हूँ,
मैं किसिम-किसिम के गीत बेचता हूँ।
जी, माल देखिए, दाम बताऊँगा,
बेकाम नहीं हैं, काम बताऊँगा,
कुछ गीत लिखे हैं मस्ती में मैंने,
कुछ गीत लिखे हैं पस्ती में मैंने,
यह गीत सख्त सरदर्द भुलाएगा,
यह गीत पिया को पास बुलाएगा!

जी, पहले कुछ दिन शर्म लगी मुझको,
पर पीछे-पीछे अक्ल जगी मुझको,
जी, लोगों ने तो बेच दिये ईमान,
जी, आप न हों सुनकर ज्यादा हैरान—
मैं सोच-समझकर आखिर

अपने गीत बेचता हूँ,
जी हाँ हुजूर, मैं गीत बेचता हूँ,
मैं तरह-तरह के गीत बेचता हूँ,
मैं किसिम-किसिम के गीत बेचता हूँ।

यह गीत सुबह का है, गाकर देखें,
यह गीत गज़ब का है, ढाकर देखें,
यह गीत ज़रा सूने में लिक्खा था,
यह गीत वहाँ पूने में लिक्खा था,
यह गीत पहाड़ी पर चढ़ जाता है,
यह गीत बढ़ाये से बढ़ जाता है,
यह गीत भूख और प्यास भगाता है,
जी, यह मसान में भूत जगाता है,
यह गीत भुवाली की है हवा हुजूर,
यह गीत तपेदिक की है दवा हुजूर,
मैं सीधे-सीधे और अटपटे
गीत बेचता हूँ,
जी हाँ, हुजूर मैं गीत बेचता हूँ।

जी, और गीत भी हैं, दिखलाता हूँ
जी, सुनना चाहें आप तो गाता हूँ,
जी, छन्द और बछन्द पसंद करें,
जी, अमर गीत और वे जो तुरन्त मरें।
ना, बुरा मानने की इसमें क्या बात,
मैं पास रखे हूँ कलम और दावात.....
इनमें से भायें नहीं, नये लिख दूँ..... ?
जो नये चाहिए नहीं, गये लिख दूँ!
इन दिनों कि दुहरा है कवि-धन्धा,
हैं दोनों चीजें व्यस्त, कलम-कन्धा।
कुछ घण्टे लिखने के, कुछ फेरी के,
जी, दाम नहीं लूँगा इस देरी के।
मैं नये-पुराने सभी तरह के
गीत बेचता हूँ,
जी हाँ, हुजूर मैं गीत बेचता हूँ,
मैं तरह-तरह के गीत बेचता हूँ,
मैं किसिम-किसिम के गीत बेचता हूँ।

जी, गीत जनम का लिखूँ, मरण का लिखूँ,
जी, गीत जीत का लिखूँ, शरण का लिखूँ,
यह गीत रेशमी है, यह खादी का,
यह गीत पित्त का है, यह बादी का।
कुछ और डिजाइन भी हैं, यह इल्मी–
यह लीजे चलती चीज नयी फिल्मी।

यह सोच-सोच कर मर जाने का गीत,
यह दुकान से घर जाने का गीत।
जी नहीं, दिल्लगी की इसमें क्या बात ?
मैं लिखता ही तो रहता हूँ दिन-रात,
तो तरह-तरह के बन जाते हैं गीत,
जी, रूठ-रूठ कर मन जाते हैं गीत।
जी, बहुत ढेर लग गया, हटाता हूँ,
गाहक की मर्जी, अच्छा जाता हूँ।
मैं बिलकुल अन्तिम और दिखाता हूँ—
या भीतर जाकर पूछ आइए आप,
है गीत बेचना वैसे बिलकुल पाप
क्या करूँ मगर लाचार हारकर
गीत बेचता हूँ,
जी हाँ, हुजूर मैं गीत बेचता हूँ,
मैं किसिम-किसिम के बीत बेचता हूँ।

2. सन्नाटा

तो पहले अपना नाम बता दूँ तुमको,
फिर चुपके-चुपके धाम बता दूँ तुमको;
तुम चौंक नहीं पड़ना, यदि धीमे-धीमे
मैं अपना कोई काम बता दूँ तुमको।

कुछ लोग भ्रांतिवश मुझे शान्ति कहते हैं,
निस्तब्ध बताते हैं, कुछ चुप रहते हैं;
मैं शांत नहीं, निस्तब्ध नहीं, फिर क्या हूँ ?
मैं मौन नहीं हूँ, मुझमें स्वर बहते हैं।

कभी-कभी कुछ मुझमें चल जाता है,
कभी-कभी कुछ मुझमें जल जाता है;
जो चलता है, वह शायद है मेढक हो,
वह जुगनू है, जो तुमको छल जाता है।

मैं सन्नाटा हूँ, फिर भी बोल रहा हूँ,
मैं शांत बहुत हूँ फिर भी डोल रहा हूँ;
यह 'सर्-सर्' यह 'खड़-खड़' सब मेरी है,
है यह रहस्य मैं इसको खोल रहा हूँ।

मैं सूने में रहता हूँ, ऐसा सूना,
जहाँ घास उगा रहता है ऊना;
और झाड़ कुछ इमली के, पीपल के,
अंधकार जिनसे होता है दूना।
तुम देख रहे हो मुझको, जहाँ खड़ा हूँ!
तुम देख रहे हो मुझको, जहाँ पड़ा हूँ!
मैं ऐसे ही खंडहर चुनता फिरता हूँ,
मैं ऐसी ही जगहों में पला, बढ़ा हूँ।

हाँ, यहाँ किले की दीवारों के ऊपर,
नीचे तलघर में या समतल पर, भू पर,
कुछ जन-श्रुतियों पर पहरा यहाँ लगा है,
जो मुझे भयानक कर देती हैं छूकर।

तुम डरो नहीं, डर वैसे कहाँ नहीं है?
पर खास बात डर की कुछ यहाँ नहीं है;
बस एक बात है, वह केवल ऐसी है,
कुछ लोग यहाँ थे, अब वे यहाँ नहीं है।

यहाँ बहुत दिन हुए एक थी रानी,
इतिहास बताता उसकी नहीं कहानी;
वह किसी एक पागल पर जान दिये थी,
थी उसकी केवल एक यही नादानी!

यह घाट नदी का, अब जो टूट गया है,
यह घाट नदी का, अब जो फूट गया है;
वह यहाँ बैठकर रोज़-रोज़ गाता था,
अब यहाँ बैठना उसका छूट गया है।

शाम हुए रानी खिड़की पर आती,
थी पागल के गीतों को वह दुहराती;
तब पागल आता और बजाता बंशी,
रानी उसकी बंशी पर छुपकर गाती

किसी एक दिन राजा ने यह देखा,
खिंच गयी हृदय पर उसके दुःख की रेखा;
वह भरा क्रोध में आया और रानी से,
उसने माँगा इन सब साँझों का लेखा।

रानी बोली पागल को ज़रा बुला दो,
मैं पागल हूँ, राजा तुम मुझे भुला दो;
मैं बहुत दिनों से जाग रही हूँ राजा,
बंशी बजवा कर मुझको जरा सुला दो।

वह राजा था हाँ, कोई खेल नहीं था,
ऐसे जवाब से उसका मेल नहीं था;
रानी ऐसे बोली थी, जैसे उसके
इस बड़े किले में कोई जेल नहीं था।

तुम जहाँ खड़े हो, यहीं कभी सूली थी,
रानी की कोमल देह यहीं झूली थी;
हाँ, पागल की भी यहीं, यहीं रानी की,
राजा हँसकर बोला, रानी भूली थी।

किन्तु नहीं फिर राजा ने सुख जाना,
हर जगह गूँजता था पागल का गाना;
बीच-बीच में, राजा तुम भूले थे,
रानी का हँसकर सुन पड़ता था ताना।

तब और बरस बीते, राजा भी बीते,
रह गये किले के कमरे-कमरे रीते;
तब मैं आया, कुछ मेरे साथी आये,
अब हम सब मिलकर करते हैं मनचीते।

पर कभी-कभी जब पागल आ जाता है,
लाता है रानी को, या गा जाता है;
तब मेरे उल्लू, साँप और गिरगिट पर,
अनजान एक सकता-सा छा जाता है।

3. फूल कमल के

फूल लाया हूँ कमल के
क्या करूँ इनका?
पसारें आप आँचल
छोड़ दूँ हो जाय जी हल्का!
किन्तु होगा क्या कमल के फूल का?

कुछ नहीं होता किसी की भूल का
मेरी कि तेरी हो
ये कमल के फूल केवल भूल हैं!
भूल से आँचल भरूँगी
तो वज़न इनके मरूँगी

ये कमल के फूल लेकिन
मानसर के हैं
मैं इन्हें हूँ बीच से लाया
न समझो तीर पर के हैं
भूल भी यादें हैं अछूती भूल हैं,
मानसरवाले कमल के फूल हैं।

4. सतपुड़ा के जंगल

सतपुड़ा के घने जंगल
नींद में डूबे हुए-से,
ऊँघते अनमने जंगल।
झाड़ ऊँचे और नीचे
चुप खड़े है आँख मींचे,
घास चुप है, काश चुप है
मूक शाल, पलाश चुप है;
बन सके तो धँसो इनमें
धँस न पाती हवा जिनमें,
सतपुड़ा के घने जंगल
नींद में डूबे हुए-से
ऊँघते, अनमने जंगल!
सड़े पत्ते, गले पत्ते,
हरे पत्ते, जले पत्ते,
वन्य को पथ ढँक रहे-से,
पंक दल में पले पत्ते,
चलो इन पर चल सको तो,
दलो इनको दल सको तो,
ये घिनौने-घने जंगल,
नंद में डूबे हुए-से
ऊँघते, अनमने जंगल!

अटपटी उलझी लताएँ,
डालियों को खींच खाएँ
पैरों को पकड़े अचानक,
प्राण को कसलें कपाएँ,
साँप-सी काली लताएँ
बला की पाली लताएँ
लताओं के बने जंगल,
नींद में डूबे हुए-से
ऊँघते, अनमने जंगल!
मकड़ियों के जाल मुँह पर,
और सिर के बाल मुँह पर,
मच्छरों के दंश वाले,
दाग काले-लाल मुँह पर,
बात झँझा वहन करते,
चलो इतना सहन करते,
कष्ट से ये सने जंगल
नींद में डूबे हुए-से
ऊँघते, अनमने जंगल!
अजगरों से भरे जंगल,
अगम, गति से परे जंगल,
सात-सात पहाड़ वाले,
बड़े-छोटे झाड़ वाले,
शेर वाले बाघ वाले
गरज और दहाड़ वाले,
कंप से कनकने जंगल,
नींद में डूबे हुए-से,
ऊँघते, अनमने जंगल!
इन वनों के खूब भीतर,
चार मुर्गे, चार तीतर,
पाल कर निश्चिंत बैठे,
विजन वन के बीच बैठे,
झोपड़ी पर फूस डाले
गोंड तगड़े और काले
जब कि होली पास आती,
सरसराती घास गाती,

और महुए से लपकती,
मत्त करती बास आती,
गूँज उठते ढोल इनके,
गीत इनके ढोल इनके।
सतपुड़ा के घने जंगल
नींद में डूबे हुए-से
ऊँघते, अनमने जंगल!
जागते अँगड़ाइयों में
खोह खड्डों खाइयों में
घास पागल, काश पागल,
शाल पागल, पलाश पागल,
लता पागल, वात पागल,
डाल पागल, पात पागल,
मत्त मुर्गे और तीतर,
इन वनों के खूब भीतर!
क्षितिज तक फैला हुआ-सा,
मृत्यु तक मैला हुआ-सा,
क्षुब्ध काली लहर वाला,
मथित, उत्थित ज़हर वाला
मेरु वाला, शेष वाला,
शंभू और सुरेश वाला,
एक सागर जानते हो?
उसे कैसा मानते हो?
ठीक वैसे घने जंगल,
नींद में डूबे हुए-से
ऊँघते, अनमने जंगल!
धँसो इनमें डर नहीं है,
मौत का यह घर नहीं है,
उतर कर बहते अनेकों,
कल-कथा कहते अनेकों,
नदी निर्झर और नाले,
इन वनों ने गोद पाले,
लाख पंछी सौ हिरन--दल,
चाँद के कितने किरन-दल,
झूमते बन-फूल, फलियाँ,

खिल रहीं अज्ञात कलियाँ,
हरित दूर्वा, रक्त किसलय,
पूत, पावन, पूर्ण रसमय,
सतपुड़ा के घने जंगल,
लताओं के बने जंगल।

5. स्नेह शपथ

हो दोस्त या कि वह दुश्मन हो
हो परिचित या परिचय विहीन
तुम जिसे मानते रहे बड़ा
या जिसे मानते रहे दीन,
यदि कभी किसी कारण से
उसके पथ पर उड़ती दिखे धूल
तो सख्त बात कह उठने की
रे, तेरे हाथों हो न भूल।
मत कहो कि वह ऐसा ही था
मत कहो कि इसके सौ गवाह,
यदि सचमुच ही वह फिसल गया
या पकड़ी उसने गलत राह–
तो सख्त बात से नहीं, स्नेह से
काम जरा लेकर देखो,
अपने अंतर का नेह अरे,
देकर देखा।

कितने भी गहरे रहे गर्व
हर जगह प्यार जा सकता है
कितना भी भ्रष्ट जमाना हो
हर समय प्यार भा सकता है,
जो गिरे हुये को उठा सके
इससे प्यारा कुछ जतन नहीं
रे प्यार उठा पाये न जिसे
इतना गहरा कुल पतन नहीं।
देखे ऐ प्यार भरी आँखें
दुस्साहस पीले होते हैं

हर एक धृष्टता के कपोल
आँसू से गीले होते हैं
तो सख्त बात से नहीं
स्नेह से काम जरा लेकर देखो,
अपने अन्तर का नेह
अरे, देकर देखो।

तुमको शपथों से बड़ा प्यार
तुमको शपथों की आदत है,
है शपथ गलत, है शपथ कठिन
हर शपथ कि लगभग आफत है,
ली शपथ किसी ने और किसी के
आफत पास सरक आई,
तुमको शपथों से प्यार मगर
तुम पर शपथें आर्यी-आर्यी।
तो तुम पर शपथ चढ़ाता हूँ
तुम इसे उतारो स्नेह-स्नेह
मैं तुम पर इसको मढ़ता हूँ
तुम तो इसे बिखेरो गेह-गेह।
है शपथ तुम्हें करुणाकर की
है शपथ तुम्हें उस नंगे की
जो भीख स्नेह की माँग-माँग
मर गया कि उस भिखमँगे की
है, सख्त बात से नहीं
स्नेह से काम जरा लेकर देखो,
अपने अंतर का नेह
अरे, देकर देखो।

नरेश मेहता

1. प्रार्थना
2. किरन-धेनुएँ
5. समय-देवता का प्रारम्भिक अंश

1. प्रार्थना

वहन करो,
ओ मन ! वहन करो,
सहन करो पीड़ा !!
यह अंकुर है,
उस विशाल वेदना की—
वेणुवन दावा-सी थी
तुममें जो जन्मजात—
आत्मज है
स्नेह करो, अंचल से ढँककर रक्षा दो,
वरण करो,
ओ मन ! वहन करो पीड़ा !!
सृष्टिप्रिया पीड़ा है
कल्पवृक्ष—
दान समझ, शीश झुका
स्वीकारो—
ओ मन करपात्री ! मुधकरि स्वीकारो !!
वह न करो, सहन करो,
ओ मन ! वरण करो पीड़ा !!

2. किरन-धेनुएँ

उदयाचल से किरन-धेनुएँ
हाँक ला रहा वह प्रभात का ग्वाला।

पूँछ उठाये चली आ रही
क्षितिज जंगलों से टोली,
दिखा रहे पथ, इस भूमि का
सारस सुना-सुना बोली
गिरता जाता फेन मुखों से
नभ में बादल बन तिरता,
किरन-धेनुओं का समूह
यह आया अन्धकार चरता,
नभ की आम्र-छाँह में बैठा, बजा रहा वंशी रखवाला।

ग्वालिन-सी ले दूब मधुर
बसुधा हँस-हँस कर गले मिली,
चमका अपने स्वर्ण-सींग वे
अब शैलों से उतर चलीं,
बरस रहा आलोक-दूध है
खेतों-खलिहानों में,
जीवन की नव किरन फूटती
मकई में, धानों में
सरिताओं में सोम दुह रहा, वह अहीर मतवाला!

3. समय देवता का प्रारम्भिक अंश

सोने की वह मेघ चील,
अपने चमकीले पंखों में ले अन्धकार अब बैठ गयी दिन अण्डे पर।
नदी वधू की नथ का मोती चील ले गयी।
गगन बीड़ से सूरज ग्वाला हाँक रहा है दिन की गायें।
नभ का नीलापन चुप है दिशि के कन्धों पर सिर धर।
इस उतराई मार्ग दिवस के सैन्धव नतशिर हो कर उतरे, सधे चरण से,
चमक रही पीले बालों वाली अयाल उनके गरदन की।
साँझ, दिवस की पत्नी, अपने नील महल में बैठी कात रही है बादल,
दिशि की चारों कन्याएँ हैं माँग रहीं तारों की गुड़ियाँ।
अभी बादलों के परबत पर खेल रही थी दिन की लड़की स्वर्ण-किरण वह
नहीं पास में पिता देख चौंकी थी, मेले में खोये बालक-सी।
दूर आल्प्स के पार, किरण गायों की घण्टी सुनकर दौड़ रही है,
तिब्बत की ठण्डी छतें लाँघ वह।
पूरब दिशि में हड्डी के रंगवाला बादल लेटा है पेड़ों के ऊपर गगन-खेत में
दिन का श्वेत अश्व मार्ग के श्रम से थक कर मरा पड़ा ज्यों।
समय देवता!

हटा ले गये तुम अपनी आलोक-भुजा बरसा कर दिन का पानी।
अब नील तुम्हारी ग्रहण-भुजा की श्याम अँगुलियाँ,
पृथ्वी की सारस ग्रीवा पर फौलादी बन बैठ गयी हैं।
यूनानी मुनि प्लेटो की मुद्रा में बैठे समय सनातन।
घूम रही मेरी धरती में आँख गड़ाये देख रहे क्या?
बिछा हुआ है देव! तुम्हारी प्रलय-सृजन की आँखों का आकाश हमारे
देशान्तर औ' अक्षांशों औ' देशान्तर
के इन लम्बे बाँसों पर।
सविता, वरुण, जहाँ छह-छह माहों तक अतिथि बने बैठे रहते हैं,
उन प्रदेश का मैं एस्किमो,
मेरी बाँहों में बर्फ भरी,
मैं सदा खींचता आया यह हड्डी की गाड़ी असुर बर्फ़ के सीने पर,
चौड़े कन्धों के रेनडियर
बिजली जिन टाँगों की गति हो।
मुझको मेरा टुण्ड्रा प्रिय है।
इन बर्फ जंगलों में कोई भी पेड़ नहीं,
जिसकी छाया छूने से ठण्डा मन होवे तिमिरमान,
दूर आर्कटिक के खेतों में मछली की खेती होती है।
मेरी पत्नी उस बर्फ गुफा में बैठी होगी आग जलाये,
श्वेत रीछ की आशा में ही मांस-गन्ध साकार हो गयी होगी।
मुझको उसकी आँखें प्रिय हैं।
जीवन की बर्फीली निर्जनता में जैसे उग आयी हँस-मुख हरियाली।
छह महीने तक जम जाता है देव! हमारे गगन खेत में जल किरनों का
जाने किन स्लेजों पर चढ़ कर छह माहों तक अन्धकार आता ही रहता।
लगता जैसे,
सूर्या को ही ब्याह दिया दिन ने अपने प्रिय मित्र वरुण को।
विदा हो गयी कन्या की,
सब रिक्त हो गये दिग्पालों के अन्न-भाण्ड वे।
सुनसान पड़ा है नभ-मण्डप, जिसमें लगनयज्ञ का धूम घिर रहा
गाढ़ा हो कर
समय देवता!
उन नीचे के गरम देश में उतर चलो अब,
कहीं न जम जाये संवत् रथ, वर्ष अश्व सब, नील रेशमी क्षण की वल्गा।
यह नीले सूरज की धरती, नील कमल-सी शुभदा होवे,
ऋतु के बर्फ फूल चमेली से मंगल हों।

होते हैं प्रारम्भ यहाँ से मनुज पदों के रक्त चिन्ह,
जो किसी सदी में कभी चले थे, अग्नि भूख की प्यास मिटाने।
समय देवता! मनुज निष्क्रमण की है यह प्राचीन कथा।
किन्तु सामने आ पहुँची है कर्मभूमि यह उस सरिता की जिसको सब कहते हैं वोल्गा।
यह यौवन की भूमि सोवियत,
जहाँ मनुज की, उसके श्रम की होती पूजा।
पूँजी औ' साम्राज्यवाद की तोड़ बेड़ियाँ,
हाथों में नवजीवन की उल्काएँ लेकर मनुज खड़ा है कुतुब-सरीखा।
उसके चलने में लोहा है,
कौन रोक सकता है मानव को चलने से जिसके सँग-सँग आदि काल से इन्द्र चल रहा है।
मनुज चल सके इसीलिए तो अन्धकार में सूर्य चल रहा।
जहाँ गया मनु-पुत्र नदी ने जल पहुँचाया।
रत्नभरा धरा ने मानव को शतशत हीरों से लादा।
मनुज चला तो सृष्टि चली, अन्यथा पूर्व थी मात्र प्रकृति।
सबसे प्रथम इसी भूमि पर श्रम की जय-जयकार हुई है,
एक पुरुष लेनिन की वाणी शतकण्ठी हुंकार हुई है,
धीमे बोलो समय देवता! उसी पुरुष की यह समाधि है,
अभी-अभी जो कर्म-निरत था,
अब आँखें आकाश मींचकर श्रम के सपने देख रही हैं।
सदा मेघ आशीष लिये आये बिजली के रथ पर,
ऋतुओं के रंगों के चामर स्वर्ग रचें इस भू पर।
वह जो पीली भूमि दिख रही देव! वही है पीत सूर्य की
पीली वसुधा, जिसका होता कहवा मीठा।
श्रमण चीन का पीला चीवर अल्ताई पर बिछा हुआ है।
वे अफीम के खेत उदुम्बर रंगों में डूबे सोये हैं।
मोरपंख सी सजी रमणियाँ,
तितली से रंगीन शरद, मेघों से हलके उनके पंखें,
यात्रा का श्रम-ताप हरेंगे।
सीक्यांग नदी, मीठे जल से है भरी हुई।
ये चीड़ पेड़ की नौकाएँ, सन्ध्या-विहार में अभी देव को डुबा सकेंगी।
किन्तु आज तो चीन देश की वसुधा माता झुलसी हुई मृतप्राय है।
वे विदेश पूँजी की कीलें जो छाती से ठुकी हुई थीं,

तीन साल के बाद आज वे उखड़ रही हैं।
मेरी चीनी माता की आँखों में कोई भाव नहीं है।
राग-प्रेम कुछ नहीं बचा है, केवल
नयन-गगन में भूख-प्यास की चीलें मँडराती हैं।
समय देवता! बम के गोलों से भी धरती बाँझ हुई है।
चीन देश के नगर-ग्राम, घाटी-जंगल में भरा हुआ धूआँ ही धूआँ,
गोबी के मंगोल रेत पर युद्ध लाश दुर्गन्ध दे रही है।
पेकिंग की चिकनी सड़कों पर पिछला जीवन मरा पड़ा है,
नवजीवन के हाथों में गुस्से की मुट्ठी नदी हुई है,
पेशानी पर किसी आक्रमण की चिन्ता है,
दौड़-दौड़ कर चरण देश के द्वार बन्द करने में रत है,
आज वर्दियाँ तीस वर्ष के बाद उतरतीं,
लगातार बारूद उगलती बन्दूकें भी हाँफ रही हैं।
पिछली सारी फसलों के वे महल जल गये,
उन फसलों के हरे गलों में टँगे हुए ताबीज़ गुलामी झूल रहे हैं।
जाओ कालिदास के बादल, चीनी धरती बुला रही है,
जाओ हे सतरंगी सूरज, चीन देश में भोर हुई है।
दक्षिण दिशि में देव देखते हैं वह धरती की सिकुड़न-सी लम्बी रेखा,
राजनीति के फसल सरीखी खड़ी हुई दीवार चीन की,
रुक जायें इतिहासों की जिस से सेनाएँ,
मनुज बाँटने चाहे ऊँचे बुर्ज बनाकर मिची आँख के सम्राटों ने।
चीन देश की वसुधा अपने स्तन से दूध पिलाती उस टापू को,
ज्वालामुखि मस्तक है जिसका,
दूर छिपकली-सा वह छोटा टापू है जापान देश का,
जो कि मर चुका एटम-बम से।
डूब गयीं बूटों की टापें, सिसक रहा कोढ़ी-सा जीवन,
विज्ञान, धुएँ के अजगर-सा है लील रहा सब रंग रेशमी मनु-श्रद्धा का।
हिरोशिमा में मनुज मर गया।
वही मनुज, जिसके सिर पर यह गगन मुकुट है,
अन्धकार सूरज मशल ले किरनों का केसर देने को साथ चल रहा,
और जिसे, वह दिन की चिड़िया, गगन आम पर
दिन भर बैठी धूप सुनाती,
वही सृष्टि-श्री-मनुज आज विज्ञान-कब्र में मरा पड़ा है।
दौड़ रही हैं गन्धक और फास्फोरस की पीली लपटें

जिसमें उस जापान देश का सदियों का संगीत जल गया,
महल फैक्टरी सभी बुझ गये।
झुलसी हुई पलक नारी की, मेघ भरी वे भावहीन जापानी आँखें,
शिशु के हाथों में हड्डी की गुड़िया।
सूदूर पैसिफिक हरी झील में देव! हँस रहे वे धरती के द्वीप कमल हैं।
समय देवता! यह तिब्बत है,
यहाँ मनुज लामा होता है,
चावल और धान धरती की यह बर्फीली छत है सोयी।
किन्तु आज नवक्रान्ति, बन्द इसके दरवाजों पर आवाज लगाती।
यह सम्मुख धरती का पति हिमगिरि आ पहुँचा,
इसकी मैत्री सुखकर होती समय देवता!
जो प्रणाम करता है इसको श्वेत हरिण देता यह उस को।
सबसे पहले किरन इसी से लग्न रचाती,
अपनी गायें छोड़ धरा पर सूरज इससे गोधूली तक बातें करता।

●●

धर्मवीर भारती

1. कनुप्रिया का प्रारम्भिक अंश
2. कुछ चन्दन की कुछ कपूर की
5. सपना अभी भी (प्रारम्भिक पाँच कविताएँ)

1. कनुप्रिया का प्रारम्भिक अंश

(पहला गीत)

ओ पथ के किनारे खड़े
छायादार पावन अशोक-वृक्ष
तुम यह क्यों कहते हो कि
तुम मेरे चरणों के स्पर्श की प्रतीक्षा में
जन्मों से पुष्पहीन खड़े थे
तुम को क्या मालूम कि
मैं कितनी बार केवल तुम्हारे लिए—
धूल में मिली हूँ
धरती में गहरे उतर
जड़ों के सहारे
तुम्हारे कठोर तने के रेशों में
कलियाँ बन, कोंपल बन, सौरभ बन, लाली बन—
चपुके से सो गयी हूँ
कि कब मधुमास आये और तुम कब मेरे
प्रस्फुटन से छा जाओ!
फिर भी तुम्हें याद नहीं आया, नहीं आया,
अब तुम को मेरे इन जावक-रचित पाँवों ने
केवल यह स्मरण करा दिया कि मैं तुम्हीं में हूँ
तुम्हारे ही रेशे-रेशे में सोयी हुई—
और अब समय आ गया कि

मैं तुम्हारी नस-नस में पंख पसार कर उड़ूँगी
और तुम्हारी डाल-डाल में गुच्छे-गुच्छे लाल-लाल
कलियाँ बन खिलूँगी!
ओ पथ के किनारे खड़े
छायादार पावन अशोक-वृक्ष
तुम यह क्यों कहते हो कि
तुम मेरी ही प्रतीक्षा में
कितने ही जन्मों से पुष्पहीन खड़े थे !

(दूसरा गीत)

यह जो अकस्मात्
आज मेरे जिस्म के सितार के
एक-एक तार में तुम झंकार उठे हो—
सच बतलाना मेरे स्वर्णिम संगीत
तुम कब से मुझ में छिपे सो रहे थे।

सुनो, मैं अक्सर अपने सारे शरीर को—
पोर-पोर को अवगुण्ठन में ढँक कर तुम्हारे सामने गयी
मुझे तुम से कितनी लाज आती थी,
मैंने अक्सर अपनी हथेलियों में
अपना लाज से आरक्त मुँह छिपा लिया है।
मुझे तुम से कितनी लाज आती थी,
मैं अक्सर तुम से केवल तम के प्रगाढ़ परदे में मिली
जहाँ हाथ को हाथ नहीं सूझता था
मुझे तुम से कितनी लाज आती थी,

पर हाय मुझे क्या मालूम था
कि इस बेला जब अपने को
अपने से छिपाने के लिए मेरे पास
कोई आवरण नहीं रहा
तुम मेरे जिस्म के एक-एक तार से
झंकार उठोगे
सुनो ! सच बतलाना मेरे स्वर्णिम संगीत
इस क्षण की प्रतीक्षा में तुम
कब से मुझ में छिपे सो रहे थे।

(तीसरा गीत)

घाट से लौटते हुए
तीसरे पहर की अलसायी वेला में
मैंने अक्सर तुम्हें कदम्ब के नीचे
चुपचाप ध्यानमग्न खड़े पाया
मैंने कोई अज्ञात वनदेवता समझ
कितनी बार तुम्हें प्रणाम कर सिर झुकाया
पर तुम खड़े रहे अडिग, निर्लिप्त, वीतराग, निश्चल!
तुमने कभी उसे स्वीकारा ही नहीं!

दिन पर दिन बीतते गये
और मैंने तुम्हें प्रणाम करना भी छोड़ दिया
पर मुझे क्या मालूम था कि वह अस्वीकृति ही
अटूट बन्धन बन कर
मेरी प्रणाम-बद्ध अंजलियों में, कलाइयों में इस तरह
लिपट जायेगी कि कभी खुल ही नहीं पायेगी

और मुझे क्या मालूम था कि
तुम केवल निश्चल खड़े नहीं रहे
तुम्हें वह प्रणाम की मुद्रा और हाथों की गति
इस तरह भा गयी कि
तुम मेरे एक-एक अंग की एक-एक गति को
पूरी तरह बाँध लोगे
इस सम्पूर्ण के लोभी तुम
भला उस प्रणाम-मात्र को क्यों स्वीकारते ?
और मुझ पगली को देखो कि मैं
तुम्हें समझती थी कि तुम कितने वीतराग हो
कितने निर्लिप्त!

(चौथा गीत)

यह जो दोपहर से सन्नाटे में
यमुना के इस निर्जन घाट पर अपने सारे वस्त्र
किनारे रख
मैं घण्टों जल में निहारती हूँ

क्या तुम समझते हो कि मैं
इस भाँति अपने को देखती हूँ?

नहीं, मेरे साँवरे !
यमुना के नीले जल में
मेरा यह वेतसलता-सा काँपता तन-बिम्ब, और उसके चारों
ओर साँवली गहराई का अथाह प्रसार, जानते हो
कैसा लगता है–
मानो यह यमुना की साँवली गहराई नहीं है
यह तुम हो जो सारे आवरण दूर कर
मुझे चारों ओर से कण-कण, रोम-रोम
अपने श्यामल प्रगाढ़ अथाह आलिंगन में पोर-पोर
कसे हुए हो !
यह क्या तुम समझते हो
घण्टों-जल में-मैं अपने को निहारती हूँ
नहीं, मेरे साँवरे!

(पाँचवाँ गीत)

यह जो मैं गृहकाज से अलसा कर अक्सर
इधर चली आती हूँ
और कदम्ब की छाँह में शिथिल, अस्तव्यस्त
अनमनी-सी पड़ी रहती हूँ........

यह पछतावा अब मुझे हर क्षण
सालता रहता है कि
मैं उस रास की रात तुम्हारे पास से लौट क्यों आयी?
जो चरण तुम्हारे वेणुवादन की लय पर
तुम्हारे नील जलज तन की परिक्रमा दे कर नाचते रहे
वे फिर घर की ओर उठ कैसे पाये,
मैं उस दिन लौटी क्यों–
कण-कण अपने को तुम्हें दे कर रीत क्यों नहीं गयी ?
तुमने तो उस रास की रात
जिसे अंशतः भी आत्मसात् किया
उसे सम्पूर्ण बना कर
वापस अपने-अपने घर भेज दिया

पर हाय वही सम्पूर्णता तो
इस जिस्म के एक-एक कण में
बराबर टीसती रहती है,
तुम्हारे लिए।

कैसे हो जो तुम?
जब मैं जाना ही नहीं चाहती
तो बाँसुरी के एक गहरे अलाप से
मदोन्मत मुझे खींच बुलाते हो

और जब वापस नहीं आना चाहती
तब मुझे अंशतः ग्रहण कर
सम्पूर्ण बना कर लौटा देते हो!

2. कुछ चंदन की कुछ कपूर की

ये अनजान नदी की नावें
जादू के-से पाल
उड़ाती
आर्त
मन्थर चाल!
नीलम पर किरनों
की साँझी

एक न डोरी
एक न माँझी
फिर भी लाद निरन्तर लातीं
सेन्दुर और प्रवाल!

कुछ समीप की
कुछ सुदूर की
कुछ चन्दन की
कुछ कपूर की
कुछ में गेरू, कुछ में रेशम
कुछ में केवल जाल!

ये अनजान नदी की नावें
जादू के-से पाल
उड़ाती
आर्ती
मन्थर चाल

3. सपना अभी भी

प्रारम्भिक पाँच कविताएँ

1. कन-कन तुम्हें जी कर

अतल गहराई तक
तुम्हीं में डूब कर मिला हुआ अकेलापन,
अँजुरी भर-भर कर
तुम्हें पाने के असहनीय सुख को सह जाने की थकन,
और शाम गहराती हुई
छाती हुई तन मन पर
कन-कन तुम्हें जी कर
पी कर बूँद-बूँद तुम्हें—गाढ़ी एक तृप्ति की उदासी.....
और तीसरे पहर की तिरछी धूप का सिंकाव
और गहरी तन्मयता का अकारण उचटाव
और अपने ही कन्धे पर टिके इस चेहरे का
रह-रह याद आना
और यह न याद आना
कि चेहरा यह किसका है!

2. उसी ने रचा है

नहीं—वह नहीं जो कुछ मैंने जिया
बल्कि वह सब-वह सब जिसके द्वारा मैं जिया गया
नहीं,
वह नहीं, जिसको मैंने ही चाहा, अवगाहा, उगाहा—
जो मेरे ही अनवरत प्रयासों से खिला
बल्कि वह जो अनजाने ही किसी पगडंडी पर अपने-आप
मेरे लिए खिला हुआ मिला
वह भी नहीं
जिसके लिए पंख बाँध-बाँध सूर्य तक उड़ा मैं,
गिरा-गिर गिर कर टूटा हूँ बार-बार
नहीं-बल्कि वह जो अथाह नीले शून्य-सा फैला रहा
मुझसे निरपेक्ष, निज में असस्पृक्त, निर्विकार
नहीं, वह नहीं, जिस थकान में याद किया, पीड़ा में
पाया, उदसी में गाया
नहीं, बल्कि वह जो अदा गाते समय गले में रुँध गया

भर आया
जिसके समक्ष मैंने अपने हर यत्न को
अधूरा, हर शब्द को झूठा-सा
पड़ता हुआ पाया–

हाय मैं नहीं,
मुझमें एक वही तो है जो हर बार टूटा है
–हर बार बचा है,
मैंने नहीं बल्कि उसने ही मुझे जिया
पीड़ा में, पराजय में, सुख की उदासी में, लक्ष्यहीन भटकन में
मिथ्या की तृप्ति तक में, उसी ने कचोटा है–
–उसी ने रचा है!

3. रवीन्द्र से

नहीं नहीं कभी नहीं थी, कोई नौका सोने की!
सिर्फ दूर तक थी बालू, सिर्फ दूर तक अँधियारा
वह थी क्या अपनी ही प्यास, कहा था जिसे जलधारा?
नहीं दिखा कोई भी पाल, नहीं उठी कोई पतवार
नहीं तट लगी कोई नाव, हमने हर शाम पुकारा
अर्थहीन निकला वह गीत
शब्दों में हम हुए व्यतीत
हमने भी क्या कीमत दी यों विश्वासी होने की!
नहीं नहीं कभी नहीं थी
कोई नौका सोने की
हमको लेने कब आया कोई भी चन्दन का रथ ?

हमने भी अनमने उदास धूल में लिखे अपने नाम
हमने भी भेजे सन्देश उड़ते बादल वाली शाम
जाग-जाग वातायन से देखी आगन्तुक की राह
हाय क्या अजब थी वह प्यास, हाय हुआ पर क्या अंजाम
लगते ही जरा कहीं आँच
निकला हर मणि-दाना काँच
शेष रहे लुटे थके हम, शेष वही अन्तहीन पथ
हमको लेने कब आया
कोई भी चन्दन का रथ ?

4. दीदी के धूल भरे पाँव

दीदी के धूल भरे पाँव
बरसों के बाद आज
फिर यह मन लौटा है क्यों अपने गाँव,

अगहन की कोहरीली भोर :
हाय कहीं अब तक क्यों
दूख-दूख जाती है मन की वह कोर!
एक लाख मोती, दो लाख जवाहर
वाला, यह झिलमिल करता महानगर
होते ही शाम कहाँ जाने बुझ जाता है—
उग आता है मन में
जाने कब का छूटा एक पुराना गँवई का कच्चा घर
जब जीवन में केवल इतना ही सच था :
कोकाबेली की लड़, इमली की छाँव!

5. सागर पर सूर्यास्त

लटें छितरातीं समुद्री हवाओं पर
तैरती है एक गाढ़ी छाप
पतले धनुष होठों की
पंचमी की चाँदनी से
क्षीण, गौर, कटाव वाले बदन को
घेरती है एक आतुर बाँह
यह गुलाबों की परत पर परत पाँखुरियाँ
सेज की सलवटों में छूटी गिरी बेंदी
सरीखा सूर्य सागर पर !

द्रुतपाठ

केदारनाथ अग्रवाल

श्री केदारनाथ अग्रवाल का जन्म बाँदा जनपद की बबेरु तहसील के कमासिन नामक ग्राम में 1 अप्रैल, 1911 को हुआ था। इनके पिता का नाम हनुमान प्रसाद तथा माता का नाम घसिट्टो देवी था।

यद्यपि केदारनाथ जी एक सामान्य वस्त्र-व्यवसायी परिवार से संबद्ध थे, पर आपने वकालत का पेशा अपनाया। कविता के प्रति आपकी रुचि विद्यार्थी-जीवन से ही थी। जिसे निराला जी तथा श्री रामविलास शर्मा के सान्निध्य ने और अधिक तीव्रता प्रदान की। केदारनाथ जी 22 जून, 2000 को दिवंगत हो गये। अपने विद्यार्थी-जीवन से मृत्युपर्यन्त आप काव्य-सर्जनारत रहे।

रचनाएँ

केदारनाथ जी का साहित्यकार-व्यक्तित्त्व बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न था। आप उपन्यासकार, निबंधकार, समालोचक, यात्रा-संस्मरणकार एवं कवि सभी कुछ थे, पर आपका प्रमुख -व्यक्तित्त्व कवि का ही था। आपके 19 काव्य-संकलन अब तक प्रकाशित हो चुके हैं, जिनके नाम निम्नवत् हैं—

काव्य-संकलन—1. युग की गंगा, 2. नींद के बादल, 3. लोक और आलोक, 4. फूल नहीं रंग बोलते हैं, 5. आग का आईना, 6. गुलमेंहदी, 7. पंख और पतवार, 8. मार प्यार की थापें, 9. हे मेरी तुम, 10. अपूर्वा, 11. कहें केदार खरी-खरी, 12. बम्बई का रक्त-स्नान, 13. आत्मगंध, 14. जमुनजल तुम, 15. बोले बोल अबोल, 16. जो शिलायें तोड़ते हैं, 17. पुण्यदीप, 18. अनहारी हरियाली 10. खुली आँखें खुले डैने।

अनूदित काव्य-संकलन—देश-विदेश की कविताएँ।

1975 में प्रकाशित यात्रा-संस्मरण '**बस्ती खिले गुलाबों की** (गद्य-रचना)' पर आपको 'सोवियत-लैण्ड-नेहरू-पुरस्कार' से सम्मानित किया गया था।

कवि रूप—केदारनाथ अग्रवाल प्रगतिवादी कवि थे, उनका चिंतन-मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित था, तथापि उनको निरा मार्क्सवादी कवि समझना अथवा कहना उपयुक्त न होगा, क्योंकि न तो उनका काव्य मार्क्सवाद के प्रचार का माध्यम ही है और न वह सर्वहारा-वर्ग तक सीमित है। वस्तुतः उनके काव्य में लोक-मंगल की कामना निहित है। उनके काव्य में युग-जीवन का सत्य बोल रहा है, वह जनवादी कवि थे, देखिए, उन्हीं के शब्दों में

हम लेखक हैं,
कथाकार हैं।
हम जीवन के भाष्यकार हैं,
हम कवि हैं, जनवादी।

जनवादी कवि के रूप में केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में एक ओर श्रमिक-वर्ग के जीवन-संघर्ष का यथार्थ चित्रण है तथा दूसरी ओर मध्यमवर्गीय समाज के खोखले आदर्शों का मार्मिक चित्रण। इन दोनों दिशाओं का संकेत करती कवि की कविता में शोषक-वर्ग के विरुद्ध युद्ध का शंखनाद एवं मानवी स्वाधीनता तथा श्रमजीवी हितों के स्वर की मुखरता है।

किन्तु, केदारनाथ अग्रवाल का एक दूसरा कविरूप भी है और वह है प्रकृति के कवि का।

केदारनाथ अग्रवाल के दोनों ही कवि-रूपों के कुछ चित्र प्रस्तुत हैं—

जनवादी कवि रूप में

(ग्रामीण-जीवन के यथार्थ का चित्र)

जब बाप मरा तब यह पाया
भूखे किसान के बेटे ने
घर का मलवा, टूटी खटिया
कुछ हाथ भूमि वह भी परती।

'युग की गंगा' संकलन से उद्धृत पंक्तियों में नागरिक निर्धन-जीवन के यथार्थ का एक चित्र देखिये—

आह उमड़कर
उठती है, नंगे-भूखों की
काल-रात्रि का नाग नाचता है फन फाड़े
यही अमीनाबाद है।

'मोरचे पर' कविता से उद्धृत निम्नलिखित पंक्तियों में मानवी-स्वाधीनता एवं श्रमजीवी-हितों की विजय के प्रति कवि के अटूट विश्वास का मुखर-स्वर सुनिए—

शब्द के कर्मण्य-कर से जोत धरती
मानवी स्वाधीनता के बीज बोता जा रहा हूँ,
और श्रमजीवी हितों के अंकुरों को
मैं उगाता जा रहा हूँ,
जो पराजित हो नहीं सकते किसी से
जो मिटाये जा नहीं सकते किसी से,
जो मरेंगे किन्तु फिर जी कर लड़ेंगे
मैं उन्हें ऊपर उठाता जा रहा हूँ।

प्रकृति के कवि के रूप में

'धूप' शीर्षक कविता की कुछ पंक्तियाँ देखिए–

धूप चमकती है चाँदी की साड़ी पहने
मैके में आयी बेटी की तरह मगन है,
फूली सरसों की छाती से लिपट गयी है
जैसे दो हमजोली सखियाँ गले मिली हैं।

केदारनाथ अग्रवाल का एक तीसरा कवि रूप भी है, और वह है 'प्रेम के कवि' का रूप। इस रूप में केदारनाथ 'नारी-प्रेम' के उपासक हैं।

नारी-प्रेम के उपासक के रूप में–केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में 'नारी-प्रेम' के तीन रूप देखने को मिलते हैं, (1) स्वकीया-प्रेम, (2) परकीया प्रेम तथा (3) प्रकृति-प्रेम। उनके काव्य में प्रथम दो रूपों में के चित्र माँसल और उत्तेजक हैं। जहाँ तक तीसरे रूप का प्रश्न है प्रकृति को भी उन्होंने नारी रूप में ही देखा है और वह भी अधिकांशत: आलम्बन रूप में रखकर। इस रूप में उनका प्रकृति-प्रेम प्रेरक है तथा देश-भक्ति की भावना से ओत-प्रोत है। अपनी कुछ कविताओं में वह विशुद्ध राष्ट्र-प्रेमी के रूप में भी दर्शित है।

कला-पक्षीय सौन्दर्य

मार्क्सवादी-चिन्तन से प्रभावित होते हुए भी केदारनाथ की कविता में अन्य मार्क्सवादी कवियों की भाँति कला-पक्ष की उपेक्षा नहीं की गई है। उनमें भाव-भाषा-अलंकार की त्रिवेणी प्रवाहित है।

भाषा–केदारनाथ अग्रवाल की भाषा सशक्त एवं विषयानुकूल है। उसमें अधिकांश शब्द बोलचाल के हैं, यथा–खून, सूली आदि। कुछ शब्द गढ़े भी गये हैं, यथा–हठ से हठीली, चम्पा से चम्पई तथा हरियाली से हरियायेगी आदि। कुछ उर्दू भाषा के शब्दों का भी प्रयोग हैं, जैसे–आबोहवा, पर संस्कृत भाषा के तत्सम शब्द भी है, जैसे–सुन्दरतम्, स्वर्ण-मुद्रा, वेणुवादन, प्रतुनु, शृंगार आदि।

अलंकार–केदारनाथ अग्रवाल की भाषा में छायावादी कवियों की भाँति अलंकारों का सायास प्रयास भले ही नहीं है, पर स्वभावत: आगमित अलंकारों का अभाव भी नहीं है। उनमें उपमा, रूपक, मानवीकरण आदि प्रमुख हैं। प्रतीकों की सुन्दर योजना है। व्यंग्न-भंगिमा, प्रतीकात्मकता, बिम्बात्मकता एवं छंदमुक्तता आपके काव्य की प्रमुख विशेषताएँ हैं।

नये कवियों में केदारनाथ अग्रवाल 'पौरुष के कवि' के नाम से प्रख्यात हैं।

2

शिवमंगल सिंह 'सुमन'

डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' का जन्म उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले के झगरपुर ग्राम में 5 अगस्त सन् 1915 को हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा भी वहीं हुई ग्वालियर के विक्टोरिया कॉलेज से बी. ए. और काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से एम. ए., डी. लिट् की उपाधियाँ प्राप्त कर ग्वालियर, इन्दौर और उज्जैन में उन्होंने अध्यापन कार्य किया।

शिवमंगल सिंह 'सुमन' का कार्यक्षेत्र अधिकांशतः शिक्षा जगत् से सम्बद्ध रहा। वे ग्वालियर के विक्टोरिया कॉलेज में हिन्दी के व्याख्याता, माधव महाविद्यालय उज्जैन के प्राचार्य और फिर कुलपति रहे। अध्यापन के अतिरिक्त विभिन्न महत्वपूर्ण संस्थाओं और प्रतिष्ठानों से जुड़कर उन्होंने हिन्दी साहित्य में श्रीवृद्धि की। सुमन जी प्रिय अध्यापक, कुशल प्रशासक, प्रखर चिंतक और विचारक भी थे। वे साहित्य को बोझ नहीं बनाते, अपनी सहजता में गम्भीरता को छिपाए रखते। वह साहित्य प्रेमियों में ही नहीं अपितु सामान्य लोगों में भी बहुत लोकप्रिय थे। शहर में किसी अज्ञात-अजनबी व्यक्ति के लिए रिक्शे वाले को यह बताना काफी था कि उसे सुमन जी के घर जाना है। रिक्शा वाला बिना किसी पूछताछ किए आगन्तुक को उनके घर तक छोड़ आता। एक बार सुमन जी कानपुर के एक महाविद्यालय में किसी कार्यक्रम में आए। कार्यक्रम की समाप्ति पर कुछ पत्रकारों ने उन्हें घेर लिया। आयोजकों में से किसी ने कहा सुमन जी थके हैं। इस पर सुमन जी तपाक् से बोले नहीं मैं थका नहीं हूँ। पत्रकार तत्कालिक साहित्य के निर्माता है, उनसे दो-चार पल बात करना अच्छा लगता है। डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' के जीवन का सबसे महत्वपूर्ण क्षण वह था जब उनकी आँखों पर पट्टी बाँधकर उन्हें एक अज्ञात स्थान पर ले जाया गया। जब आँख की पट्टी खोली गई तो वह हतप्रभ थे। उनके समक्ष स्वतन्त्रता-संग्राम के महायोद्धा चंद्रशेखर आजाद खड़े थे। आजाद ने उनसे प्रश्न किया था, क्या यह रिवाल्वर दिल्ली ले जा सकते हो। सुमन जी ने बेहिचक प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। आजादी के दीवानों के लिए काम करने के आरोप में उनके विरुद्ध वारंट जारी हुआ। सरल स्वभाव के सुमन जी सदैव अपने प्रशंसकों से कहा करते थे, मैं विद्वान नहीं बन पाया। विद्वता की देहरी भर छू पाया हूँ प्राध्यापक होने के साथ प्रशासनिक कार्यों के दबाव ने मुझे विद्वान बनने से रोक दिया।

सुमन जी की प्रमुख कृतियाँ इस प्रकार हैं—

काव्य-संग्रह—हिल्लोल, जीवन के गान, प्रलय-सृजन, विश्वास बढ़ता ही गया, पर आँखे नहीं भरी, विंध्य हिमालय, मिट्टी की बारात, वाणी सी व्यथा, कटे अंगूरों की वंदनवारे।

गद्य रचनाएँ—महादेवी की काव्य-साधना, गीति काव्य : उद्भव और विकास

नाटक—प्रकृति पुरुष कालिदास।

जिन्होंने सुमनजी को सुना है वे जानते हैं कि 'सरस्वती' कैसे बहती है। सरस्वती की गुप्त धारा का वाणी में दिग्दर्शन कैसा होता है। जब बोलते थे तो तथ्य, उदाहरण, परम्परा, इतिहास, साहित्य, वर्तमान का इतना जीवंत चित्रण होता था कि श्रोता अपने आनंद की अनुभूति करते हुए 'ज्ञान' और ज्ञान की 'विमलता' से भरापूरा महसूस करता था। वह अंदर ही अंदर गूंजता रहता था और अनेकानेक अर्थों की 'पोटली' खोलता था। सुमनजी जैसा प्रखर वक्ता मिलना कठिन हैं। सुमनजी जितने ऊँचे, पूरे, भव्य व्यक्तित्व के धनी थे, ज्ञान और कवि कर्म में भी वे शिखर पुरुष थे। उनकी ऊँचाई स्वयं की ही नहीं वे अपने आसपास के हर व्यक्ति में ऊँचाइयों, अच्छेपन का रचनात्मकता का अहसास जगाते थे। उनकी विद्वता आक्रांत नहीं करती थी। उनकी विद्वता प्रशिक्षित करते हुए दूसरों में छुपी ज्ञान, रचना, गुणों की खदान से सोने की सिल्लियाँ भी निकालकर बताते थे कि 'भई खजाना' तो तुम्हारे पास भरा पड़ा है। कभी-कभी उनके बारे में कहा जाता था कि सुमनजी तारीफ करने में अति कर जाते थे। जबकि वे तारीफ की अति नहीं वरन् उन छुपी हुई रचना समृद्धि की तरफ इशारा करते थे जो आंखों में छुपी होती थी। वे किसी को 'बौना' सिद्ध नहीं करते, उन्होंने सदा सकारात्मकता से हर व्यक्ति, स्थान, लोगों, रचना को देखा। वे मूलत: इंसानी प्रेम, सौहार्द के रचनाकर्मी रहे। वे छोटी-छोटी ईंटों से भव्य इमारत बनाते थे। भव्य इमारत के टुकड़े नहीं करते थे। सामाजिक निर्माण की उनकी गति सकारात्मक, सृजनात्मक ही रही। फिर एक बात है तारीफ या प्रशंसा करने के लिए बेहद बड़ा दिल चाहिए, वह सुमनजी में था। वे प्रगतिशील कवि थे। वे वामपंथी थे। लेकिन 'वाद' को 'गठरी' के लिए बोझ नहीं बनने दिया। उसे ढोया नहीं, वरन् अपनी जनवादी, जनकल्याण, प्रेम, इंसानी जुडाव, रचनात्मक विद्रोह सृजन से 'वाद' को खंगालते रहे, इसीलिए वे 'जनकवि' हुए वर्ना 'वाद' की बहस और स्थापनाओं में कवि कर्म, उनका मानस, कर्म कहीं क्षतिग्रस्त हो गया होता।

सुमन जी को अनेक सम्मानों तथा पुरस्कारों से विभूषित किया गया, जिनमें प्रमुख हैं—'मिट्टी की बारात' पर साहित्य अकादमी पुरस्कार (1974 ई), 'मिट्टी की बारात' पर भारत भारती पुरस्कार (1993 ई.), 1974 ई. भारत सरकार द्वारा पद्मश्री से सम्मान, 1999 ई. में भारत सरकार द्वारा पद्म भूषण से सम्मानित, 1958 ई. में देव पुरस्कार, 1974 ई. में सोवियत लैंड नेहरु पुरस्कार, 1993 ई. में मध्य प्रदेश सरकार द्वारा शिखर सम्मान।

सुमनजी प्रकृति को अन्य भावनाओं से विरहित करके देखने के अभ्यस्त ही नहीं जान पड़ते। 'रंग पंचमी' उनकी ऐसी रचनाओं में से ही एक है। साथ ही यह भी लक्षित करने की बात है कि उनकी कविताएँ धीरे-धीरे बिम्बात्मक और कल्पना तथा प्रतीकों से सम्पन्न होती चली है। 'चेरापूँजी' में अथवा तत्समान अन्य प्रकृति-कविताओं में इनका निर्वाह देखा जा सकता है।

'सुमन' जी मूलत: गीतकार के रूप में सामने आए। उनका व्यक्तित्व गीतों के साथ मुक्तक रचनाओं में बँध गया। स्फुट भावनाओं की अभिव्यक्ति के प्रति उनकी सजग तत्परता उन्हें प्रबन्धकार के दायित्व से न बाँध पाई। यहाँ तक की समाजवाद से प्रभावित कविताओं में विचारों की अविकृत अभिव्यक्ति ही नहीं स्थिर अभिव्यक्ति भी

हुई। कवि के तारुण्य के साथ उन कविताओं का मेल खूब बैठा, किन्तु जीवन-विस्तार की सापेक्षता में उनमें विकास और विस्तार के चिह्न उतने प्रकट नहीं हुए जितनी उस भाव की सीमाएँ उभरी। लेकिन, वस्तुपक्ष की दृष्टि से स्थिति चाहे जो हो, यह बात स्पष्ट है कि कवि की वाणी में संयम और संतुलन निरन्तर बढ़ता गया, गीतों में संग्रथन के चिह्न स्पष्ट होते गए।

यों यह बात बहुत साफ नजर आती है कि 'सुमन' की कविता गीतों के स्वर-ताल पर ही अपना रूप नहीं सँवारती, मुक्तछन्द की छटा भी छिटकाती है, और कवित्त या रुबाई ही नहीं और भी बहुत-से नये-पुराने छन्दों का ठाठ सजाती और अनेक शैलियों का समीकरण उपस्थित करती है, फिर भी यह छिपा नहीं रहता कि भाव-तत्व से अधिक वह शैली-तत्व को श्रेय नहीं देते। इसका यह तात्पर्य कदापि नहीं कि उनकी रचनाएँ शैली-पक्ष में पिछड़ जाती हैं, बल्कि अभिप्राय केवल इतना है कि 'सुमन' जी स्वयं शैली-तत्व का सायास निर्वाह नहीं करते। विन्ध्य-हिमालय' की कविताओं में भाव तथा शैली का बड़ा ही मनोरम और मधुर सम्मिलन हुआ भी है। इन कविताओं का लेखक जैसा संस्कृत के तत्सम शब्दों का संगठनकर्ता है वैसा ही ब्रजभाषा के प्रयोग का उप-स्थितिकर्ता भी है। वह यदि शिष्ट प्रयोगाभिव्यक्ति में समर्थ हैं तो लोकशैली के प्रयोग में भी अनभ्यास की सूचना नहीं देता। कमलाकान्त पाठक ने कुछ समय पूर्व उनकी कविता के सम्बन्ध में लिखा था। "उनमें सौन्दर्य संवेदन, शब्द-संगीत, अर्थध्वनि, चित्रात्मकता, उदात्त कल्पना अथवा प्रगल्भ भावुकता सम्बन्धी अनेक अभाव भी हैं। फिर भी नई गीति-रचना के क्षेत्र में उनका कार्य अगौरवपूर्ण नहीं है।" विन्ध्य-हिमालय' की कविताएँ तथाकथित अभावों की कथा को अब सार्थक नहीं रहने देतीं। इन कविताओं में कवि कला के उन्नत शिखर पर पहुँचा हुआ दिखाई देता है।

'सुमन' की विशेषता इस बात में है वह अपने काल के संवेदन से जितने ही जुड़े हुए हैं, उतने ही समकालिक अथवा निकट पूर्ववर्ती कवियों से भी वह कहीं न कहीं समीपता का अनुभव करते हैं। स्व. राहुल जी ने इसलिए त्रिभूति के सन्दर्भ में उनकी चर्चा की है और इसीलिए आलोचक उनके ओज तथा शृंगार के सम्मिलन में 'निराला' की छाया देखते हैं उनकी भाषा पर प्रसाद तथा पन्त का प्रभाव ढूँढते-बताते हैं। लेकिन मूल भाव में 'निराला' और 'सुमन' की वृत्तियाँ भले ही एक-सी दिखाई देती हों या कि बैसवाड़े का प्रभाव दोनों में सहज-भाव से एक-सा आ गया हो तथापि 'निराला' से 'सुमन' इस बात में स्पष्टतया अलग हैं कि ओज की जो अभिव्यक्ति 'निराला' समासात्मक पदावली में देते हैं, नये-नये शब्दों के गढ़ने का जैसा शौक 'निराला' को है, कथात्मक लम्बी कविताएँ लिखने में निराला जितने क्षम हैं, 'सुमन' अपनी व्यासात्मक, तथ्यपरक एवं सरल अभिव्यक्ति के कारण ओज को उतना स्थान नहीं देते जितना आक्रोश को स्वर दे पाते हैं, नये शब्दों को गढ़ते तो हैं परन्तु 'निराला' की तरह नितान्त निराले रूप नहीं गढ़ते और उन्मुक्त भाव के कवि होने के कारण कथात्मक लम्बी कविता अवश्य ही नहीं लिखते किन्तु श्रद्धेय के प्रति श्रद्धा-सुमन अर्पित करते हुए अपनपौ अवश्य भूल जाते हैं।

हिन्दी सी वाचिक परम्परा आपकी लोकप्रियता की साक्षी है। देश भर के काव्य-प्रेमियों को अपने गीतों की रवानी से आप्यायित कर देने वाले सुमन जी 27 नवम्बर, 2002 ई. को चिर निद्रा में विलीन हो गए।

●●

दुष्यन्त कुमार

दुष्यन्त कुमार बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। वे हिन्दी गजल के मसीहा तो माने ही जाते हैं, उपन्यास, नाटक तथा एकांकी के क्षेत्र में भी उनकी देन अद्वितीय है। उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से जो मानदण्ड स्थपित किए परवर्ती साहित्य पर उसका प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

दुष्यन्त कुमार का जन्म 27 सितम्वर, 1931 ई. को राजपुर जिला बिजनौर के एक संभ्रात त्यागी परिवार में हुआ था तथा 30 दिसम्वर, 1975 ई. को 44 वर्ष की अल्पायु में भोपाल में उनका निधन हुआ।

दुष्यन्त कुमार हिन्दी नव-लेखन के सशक्त हस्ताक्षर थे। 'नई कविता' के पक्षधर होते हुए भी वे उसके अतिवाद से अछूते रहे। उनकी रचनाएँ प्रयोगवादी काव्य की दुरूहता, अतिशय बौद्धिकता, अवचेतन मन की गुत्थियों तथा नवीनता के सर्वग्राही मोह से मुक्त हैं। गजल का मूल स्वर प्रायः हुस्न और इश्क-सौन्दर्य और प्रेम रहा है। दुष्यन्त कुमार ने इनके स्थान पर गजल में आम आमी की पीड़ा, छटपटाहट, विवशता, घुटन तथा अन्तर्द्वन्द्व को अभिव्यक्ति दी। उनकी गजलों ने बेजुबानों को वाणी दी तथा उनकी नज्में मजलूमों के हाथ में आकर मशाल बन गईं उन्हीं के शब्दों में—

जो बज़्म में आए थे पर बोल नहीं पाए।
उन लोगों के हाथों में अब मेरी ग़ज़ल होगी।

× ० × ० ×

मेरी ज़बान से निकली तो सिर्फ नज़्म बनी।
तुम्हारे हाथ में आई तो एक मशाल हुई॥

कविता के रूप में दुष्यन्त कुमार के चार संग्रह प्रकाशित हुए हैं—सूर्य का स्वागत, आवाजों के घेरे, जलते वन का वसंत और साये में धूप। उनका प्रथम काव्य-संग्रह 'सूर्य का स्वागत' 1957 ई. में प्रकाशित हुआ था। इसमें 48 कविताएँ संगृहीत हैं। इनमें यौवन के कगार पर खड़े हुए युवा कवि ने अपनी रूमानियत को व्यक्त करते हुए सामाजिक समस्याओं को सुलझाने का भी प्रयास किया है तथा भोगे हुए यथार्थ का सजीव चित्रण किया है। सामाजिक राजनीतिक व्यवस्थाओं से असंतुष्ट कवि सत्य को मुखरित करता है। समाज में व्याप्त बिखराव, टूटन, घुटन तथा पारस्परिक सद्भाव को कवि ने इन शब्दों में व्यक्त किया है—

टूटी हुई ज़िन्दगी
आँगन में दीवार से पीठ लगाए खड़ी है

कटी हुई पतंग-से हम सब
छत की मुंडेरों पर पड़े हैं।

अतृप्त अभिलाषाएँ किस प्रकार कुंठित हो चुकी हैं तथा हृदय में कचोट उत्पन्न करती हुई अवसर की प्रतीक्षा में बाहर आने के लिए कितनी व्याकुल हैं, इसका मार्मिक वर्णन कवि ने नवीन प्रतीकों के माध्यम से किया है—

मेरी कुंठा
रेशम के कीड़ों-सी।
ताने-बाने बुनती
तड़प-तड़प कर। बाहर
आने को सिर घुनती
मेरी कुंठा क्वांरी कुंती

अंततः कवि की मान्यता है कि जीवन के संकटों का डटकर सामना करो। आज यदि असफलता है तो कल सफलता भी तुम्हारे पाँव चूमेगी। विश्वास सबसे बड़ा संबल है। उसके बल पर आगे बढ़ों। कवि का संदेश है—

तुम आज अगर रोते हो तो कल गा लोगे
तुम बोझ उठाते हो, तूफान उठा लोगे
पहचानो धरती करवट बदला करती है
देखो कि तुम्हारे पाँव तले भी धरती है।

1963 ई. में दुष्यतः कुमार का द्वितीय काव्य-संग्रह-'आवाजों के घेरे' प्रकाशित हुआ। इसमें 51 कविताएँ संगृहीत हैं। इनमें कवि आशावाद की ओर मुड़ता है। उसकी रचनाएँ सरल शब्दों में आम आदमी को राह दिखाती हैं। कवि मानव-समाज के लिए उज्जवल भविष्य की कामना करता है। वह उसके लिए 'आस्था', 'बल' और 'दृष्टि' की याचना करता है, जो अन्याय तथा अत्याचार को भस्म कर दे, मानव के मस्तक पर लगे काले दाग को धो सके तथा सांस्कृतिक उत्थान का पथ प्रशस्त कर सके—

आस्था दो-कि हम अपनी बिक्री से डरें
बल दो-दूसरों की रक्षा का अपहरण न करें
दृष्टि दो-जो हम सबकी वेदना पहचाने सबके सुख गायें
आग दो-जो सोने की लंका जलायें।

कवि का विश्वास है कि उसके हृदय की ज्वाला एक दिन विकास की बाधक दीवारों का अवश्य स्पर्श करेगी और अनाचार अत्याचार की जड़ता भंग होगी—

मुझे मालूम है
दीवारों को मेरी आँच जा छुएगी कभी
और बर्फ पिघलेगी, पिघलेगी।

दुष्यन्त कुमार के तृतीय काव्य-संग्रह 'जलते हुए वन का वसंत' में 45 कविताएँ संगृहीत हैं। इनमें आम आदमी की पीड़ा, बेचैनी, सम्बन्धों के खोखलेपन तथा सामाजिक, राजनीतिक, मूल्यों के विघटन का सरल भाषा में सशक्त वर्णन किया गया है। स्वातन्त्र्योत्तर

भारत में मानव-मूल्यों को जो ह्रास हुआ है, उन पर कवि ने कठोरतार्पूवक कशाघात किया है—

मैंने स्वार्थों की वेदी पर
नर बलियाँ दी हैं
और तीर्थों में दान भी दिए हैं
मुझमें हुई हैं भ्रूण हत्याएँ
मैंने मूर्तियों पर जल भी चढ़ाए हैं।

मानव के छद्म-व्यवहार, समाज की विसंगतियों तथा आदर्शों के थोथे नारों ने जीवन की दिशा ही बदल ही है। इस सन्दर्भ में कवि की कटु अनुभूति है—

लगा मुझे। केवल आदर्शों ने मारा।
सिर्फ सत्य ने छला। मुझे पता नहीं चला।

'साये में धूप' दुष्यंत कुमार की काव्य-यात्रा का अन्तिम पड़ाव है। इसका प्रकाशन 1975 ई. में हुआ। इसमें उनकी 52 गजलें हैं। इनसे हिन्दी-गजल के क्षेत्र में नवीन आयामों की स्थापना हुई। इनमें जन-साधारण के कष्टों, महँगाई, गरीबी, भुखमरी, नौकरशाही, भ्रष्टाचार, आदि का इतना मार्मिक चित्रण हुआ है कि पाठक का मन-मस्तिष्क झंकृत हो उठता है। संग्रह की प्रथम गजल में स्वतन्त्र भारत की तस्वीर है। देश की आजादी के लिए प्राण न्यौछावर करने वालों ने क्या सोचा था और परिणाम क्या निकला

कहाँ तो तय था चिरागाँ हरेक घर के लिए।
कहाँ चिराग मयस्सर नहीं पूरे शहर के लिए॥

फटे हाल लोगों की जिन्दगी का कैसा दर्दनाक चित्र है—

न हो कमीज तो पैरों से पेट ढक लेंगे।
ये लोग कितने मुनासिब हैं इस सफर के लिए॥

इस पर भी कवि की ज़बान पर प्रतिबन्ध है। इस अंधेरगर्दी के विरोध में वह अपने मुँह से दो शब्द नहीं निकाल सकता। कैसी बेबसी है —

तेरा निज़ाम है सिलदे ज़बान शायर की।
ये एहतियात जरूरी है बहर के लिए॥

अनुभूति की तरलता, बिचौलियों की कार-गुजारियों तथा जिन्दगी की तल्खियों का ऐसा सटीक वर्णन अन्यत्र दुर्लभ है—

ये सारा जिस्म झुककर बोझ से दोहरा हुआ होगा।
मैं सज्दे में नहीं था आपको धोखा हुआ होगा॥
यहाँ तक आते-आते सूख जाती है कई नदियाँ।
मुझे मालूम है पानी कहाँ ठहरा हुआ होगा॥
यहाँ तो सिर्फ गूँगे बहरे लोग बसते हैं।
खुदा जाने यहाँ पर किस तरह जलसा हुआ होगा॥

इन प्रकाशित काव्य-संग्रहों के अतिरिक्त दुष्यन्त कुमार की कुछ फुटकर कविताएँ भी मिलती हैं। उनकी डायरी में अंकित एक ऐसी ही कविता है—'चल भई गंगाराम

भजन कर।' इसमें आपातकाल की विभीषिका का सरल शब्दों में सजीव वर्णन किया गया है—

मौलिक अधिकारों पर पहरा,
जलसों पर नारों पर पहरा,
सारे अखबारों पर पहरा,
खबरें आती हैं छन-छन कर,
चल भई गंगाराम भजन कर।

दुष्यन्त कुमार का सम्पूर्ण काव्य-संसार आम आदमी के इर्द-गिर्द घूमता हुआ उसके दु:ख -दर्द को अपने में समेटते हुए उसके समाधान के लिए प्रत्यनशील दिखाई पड़ता है।

उपन्यास के क्षेत्र में दुष्यन्त कुमार की दो रचनाएँ मिलती हैं—'छोटे-छोटे सवाल' और 'आँगन में एक वृक्ष'। उनका एक उपन्यास 'दुहरी जिन्दगी' अप्रकाशित है। उनका प्रथम उपन्यास 'छोटे-छोटे सवाल' 1964 ई. में प्रकाशित हुआ था। इसमें उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार का खुलकर चित्रण किया है तथा परोक्ष रूप में मानव की उन भूलों का आकलन किया है जिनकी उपेक्षा के कारण उसे पछताना पड़ता है। छोटे-छोटे सवालों की ओर से मुँह मोड़ने पर बड़े-बड़े सवालों का जन्म होता है, जिनका समाधान कठिन हो जाता है।

'आँगन में एक वृक्ष' दुष्यन्त कुमार का दूसरा उपन्यास है, जो 'छोटे-छोटे सवाल' के प्रकाशन के चार वर्ष उपरान्त 1968 ई. में प्रकाशित हुआ। यह आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया है तथा इसमें दुष्यंतजी के पारिवारिक जीवन की कथा है। उपन्यास का आरम्भ दुष्यंतकुमार की जन्मभूमि राजपुरो कस्बे के ग्रामीण जीवन से होता है। कथा-नायक चंदन दुष्यंतजी के सौतेले बड़े भाई प्रकाशनारायण सिंह त्यागी, चौधरीजी उनके पिता चौधरी भगवतसहायजी, बीजी उनकी माताजी तथा छोटे स्वयं दुष्यंत कुमार हैं। दुष्यन्त कुमार ने इस उपन्यास में अपने बाल-मन पर पड़ने वाले अच्छे-बुरे प्रभावों का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। इसमें भाग्यवादी चिन्तन तथा परम्पराओं के खंडन के स्वर एक साथ मुखरित हुए हैं।

दुष्यन्त कुमार का एक अन्य अप्रकाशित उपन्यास 'दुहरी जिन्दगी' है। इसमें सम्बन्धों के खोखलेपन तथा सच्चाइयों से मुँह मोड़कर चलने की मार्मिक कथा अंकित है, जिसमें नाटकीयता का पर्याप्त समावेश हुआ है।

नाटक के क्षेत्र में दुष्यन्त कुमार की तीन कृतियाँ उपलब्ध हैं—'और मसीहा मर गया!', 'एक कंठ विषपायी' और 'मन के कोण'। इनमें 'और मसीहा मर गया' उनके उपन्यास 'छोटे-छोटे सवाल' का रेडियो रूपान्तर है। इसका प्रसारण आकाशवाणी, भोपाल से हुआ था, जिसे दुष्यन्त कुमार ने अपने कंठ की बदलती हुई ध्वनियों में स्वयं रिकार्ड कराया था। यह रूपान्तर उन्होंने अपने जीवन-काल के अन्तिम दिनों के कुछ पूर्व ही किया था। उपन्यास को नाटक के रूप में प्रस्तुत करते हुए उन्होंने अपने अनुसार दृश्यों की योजना की है तथा सम्पूर्ण कथावस्तु को आठ दृश्यों में विभाजित किया है। दृश्य-परिवर्तन के समय संगीत की योजना की गई है।

'एक कंठ विषपायी' दुष्यन्त कुमार का एक मात्र गीति-नाट्य है, जिसमें शिवजी की पौराणिक कथा के आधार पर परम्पराओं और रूढ़ियों का खण्डन किया गया है। राजा दक्ष अपने यहाँ आयोजित यज्ञ में अपनी बेटी सती के पति शिव को आमन्त्रित नहीं करते हैं, इस पर सती स्वयं वहाँ उपस्थित होकर अपने आपको यज्ञाग्नि में भस्म कर देती है। इस घटना पर ब्रह्मा और विष्णु शिव के प्रति सहानुभूति व्यक्त करते हैं, दूसरी ओर इन्द्र और वरुण, आदि उन पर दोषारोपण करते हैं। इसी समय क्षत-विक्षत अवस्था में दक्ष का भृत्य सर्वहत उपस्थित होता है। वह मानव-जीवन का प्रतीक है, जो टूटन, घुटन तथा निराशा से पूरित है। लेखक उसके माध्यम से समाज में फैले भ्रष्टाचार तथा पद-लिप्सा को उजागर करता है। यहाँ युद्ध के पक्ष-विपक्ष में तर्क उपस्थित करते हुए अंत में युद्ध की निरर्थकता सिद्ध की गई। सेनापति के वेश में इन्द्र जब 'प्रजा की रक्षा' की दुहाई देते हुए युद्ध का समर्थन करते हैं तब ब्रह्मा युद्ध को सामूहिक संहार तथा विध्वसंक बताते हुए इन्द्र की उक्ति का खंडन करते हुए कहते हैं—

और प्रजा की रक्षा करे युद्ध के द्वारा?
और प्रजा का रक्त बहाए..........
क्षण में सब चिन्मय सौन्दर्य रूधिरमय कर दे
गायन गुंजित नगर चीत्कारों से भर दे
जन-विवेक को
वध की बलि-वेदी पर धर दे
यह भी शासक के कर्तव्यों में अंकित है?

अंतत: शिव की सेना वापस लौट जाती है, युद्ध के काले बादल छँट जाते हैं और सर्वत्र शान्ति का मोहक वातावरण छा जाता है। यही गीति-नाट्यकार का संदेश है।

दुष्यन्त कुमार का एक-मात्र एकांकी नाटक 'मन के कोण' है। इसका नायक कमल कवि होने के कारण कल्पनाजीवी है। कल्पना की मोहक उड़ान उसे यथार्थ की कठोर भूमि से दूर ले जाती है। उसका मित्र सतीश उसे सांसारिक यथार्थ से परिचित कराता है। कमल अर्पणा से प्रेम करता है किन्तु उसका विवाह मनोहरलाल से हो जाता है। इसके बाद भी कमल को लगता है कि अर्पणा उसे भूल नहीं सकती क्योंकि मन के कोण आसानी से नहीं बदलते किन्तु कमल जब अर्पणा से मिलता है तब उसका मोह भंग हो जाता है। सतीश उसे समझाता था, 'दोस्त मैं तुम्हें जमीन पर रखना चाहता हूँ ताकि तुम कल्पनाओं के आसमान में बहुत ऊँचे न उड़ सको और ताकि कल अगर यह भ्रम टूटे, तो ज्यादा ऊँचाई से पृथ्वी पर न गिरो।' अंत में कमल को स्वयं अहसास होता है, 'मुझे लगता है कि जैसे किसी ने सैकड़ों मील की ऊँचाई से उठाकर मुझे कठोर नंगी चट्टान पर पटक दिया है। मेरे सपने चूर-चूर हो गए है।' इस प्रकार एकांकी का उद्देश्य एक कल्पनाजीवी व्यक्ति को यथार्थ के धरातल पर प्रतिष्ठित करता है और इसमें एकांकीकार को पूर्ण सफलता मिली है।

अपने अनुपम कृतित्व के कारण दुष्यन्त कुमार साहित्य के क्षेत्र में चिर काल तक स्मरण किये जाते रहेंगे।

आलोक धन्वा

जन्म : सन् 1948 ई. मुंगेर (बिहार)

प्रमुख रचनाएँ : पहली कविता **जनता का आदमी**, 1972 में प्रकाशित उसके बाद **भागी हुई लड़कियाँ, ब्रूनो की बेटियाँ** से प्रसिद्धि, **दुनिया रोज़ बनती है** (एकमात्र संग्रह)

प्रमुख सम्मान : राहुल सम्मान, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् का साहित्य सम्मान, बनारसी प्रसाद भोजपुरी सम्मान, पहल सम्मान, नागार्जुन सम्मान।

जहाँ नदियाँ समुद्र से मिलती हैं वहाँ मेरा क्या है
मैं नहीं जानता लेकिन एक दिन जाना है उधर

सातवें-आठवें दशक में कवि आलोक धन्वा ने बहुत छोटी अवस्था में अपनी गिनी चुनी कविताओं से अपार लोकप्रियता अर्जित की। सन् 1972-1973 में प्रकाशित इनकी आरभिक कविताएँ हिंदी के अनेक गंभीर काव्यप्रेमियों को जबानी याद रही हैं। आलोचकों का तो मानना है कि उनकी कविताओं ने हिंदी कवियों और कविताओं को कितना प्रभावित किया, इसका मूल्यांकन अभी ठीक से हुआ नहीं है। इतनी व्यापक ख्याति के बावजूद या शायद उसी की वजह से बनी हुई अपेक्षाओं के दबाव के चलते, आलोक धन्वा ने कभी थोक के भाव में लेखन नहीं किया। सन् 72 से लेखन आरंभ करने के बाद उनका पहला और अभी तक का एकमात्र काव्य संग्रह सन् 98 में प्रकाशित हुआ। काव्य संग्रह के अलावा वे पिछले दो दशकों से देश के विभिन्न हिस्सों में सांस्कृतिक एवं सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में सक्रिय रहे हैं। उन्होंने जमशेदपुर में अध्ययन-मंडलियों का संचालन किया और रंगकर्म तथा साहित्य पर कई राष्ट्रीय संस्थानों एवं विश्वविद्यालयों में अतिथि व्याख्याता के रूप में भागीदारी की है।

एस. के. पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स
बरेली (उ. प्र.)